बी.ए.(प्रोग्राम) द्वितीय वर्ष सेमेस्टर-III संस्कृत

DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE-3
SANSKRIT DRAMA
महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(चतुर्थ अंक)
अध्ययन सामग्री : 2 (इकाई 3)

मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग
सम्पादिका : डॉ. रमा जैन

स्नातक पाठ्यक्रम

DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE-3
SANSKRIT DRAMA
महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(चतुर्थ अंक)
अध्ययन सामग्री : 2 (इकाई 3)

विषय सूची

पाठ-1	दृश्य काव्य-एक परिचय	1-12
पाठ-2	महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं उसका चतुर्थ अंक (सामान्य परिचय)	13-21
पाठ-3	अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक (मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्या : श्लोक 1-4)	22-35
पाठ-4	अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक (मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्या : श्लोक 5-13)	36-48
पाठ-5	अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चतुर्थ अंक (मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्या : श्लोक 14-22)	49-63

सम्पादिका
डॉ. रमा जैन

लेखिका:
डॉ. दीपक कालिया

मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

दृश्य काव्य–एक परिचय

'काव्य' शब्द (कव+ण्यत् प्रत्यय) का अर्थ है कवि की रचना या कृति। 'कवेः कर्म काव्यम्' इस आधार पर काव्य को संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रियों द्वारा इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।" (साहित्यदर्पण)

"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।" (रसगङ्गाधर) आदि।

वस्तुतः सभी परिभाषाओं में मूल तथ्य यही है कि जो वाक्य या रचना सुनने वाले या पढ़ने वाले के हृदय को आनन्द प्रदान करे वही काव्य है। इस प्रकार साहित्य के माध्यम से जो आनन्दानुभूति होती है वह या तो पढ़कर, सुनकर या देखकर होती है। जब हम सुनकर या पढ़कर जिस काव्य से आनन्द व रस ग्रहण करते हैं तो वह **श्रव्यकाव्य** कहलाता है। जब हम काव्य का आनन्द उसे देखकर प्राप्त करते हैं तो वह **दृश्यकाव्य** कहलाता है। इस प्रकार काव्य दो प्रकार की कोटि का बनता है-

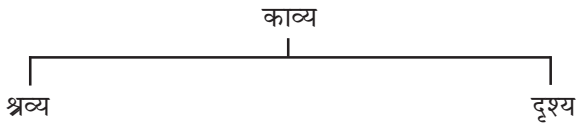

श्रव्य काव्य

महाकाव्य, खण्डकाव्य, गद्यकाव्य ये श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत माने जाते हैं क्योंकि इनका रसास्वादन सुनकर या पढ़कर किया जाता है। आदिकाव्य रामायण, ऐतिहासिककाव्य महाभारत, मेघदूत, ऋतुसंहार, रघुवंश, किरातार्जुनीयम्, नैषध चरितम्, कादम्बरी, दशकुमारचरितम्, शिवराजविजय आदि काव्य श्रव्यकाव्य हैं।

दृश्य काव्य

दृश्य शब्द का अर्थ है—देखे जाने योग्य, दृष्टिसुखद या दिखाई देने वाला। ऐसा काव्य जिसकी रसानुभूति उसे देखकर की जाए वह दृश्यकाव्य होता है। काव्य को देखकर आनन्द की प्राप्ति उस काव्य में वर्णित विषयवस्तु को रंगमंच पर प्रस्तुत करके की जाती है। यह प्रस्तुति पात्रों की वेशभूषा व अभिनय के द्वारा अधिक प्रभावशाली, बोध गम्य व सरस होती है। इन्हें काव्य की भाषा में 'रूपक' भी कहते हैं।

रूपकं तत्समारोपात्—दशरूपक (1/4)। पात्र की अवस्था का अनुकरण करने के कारण इसी को 'नाट्य' भी कहा जाता है— अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् (1/6)

दृश्यकाव्य 'रूपक' एवं 'उपरूपक' भेद से दो प्रकार का माना गया है। पुनः रूपक के दस और उपरूपक के अट्ठारह भेद बताए गए हैं जो कि संक्षेप में इस प्रकार हैं-

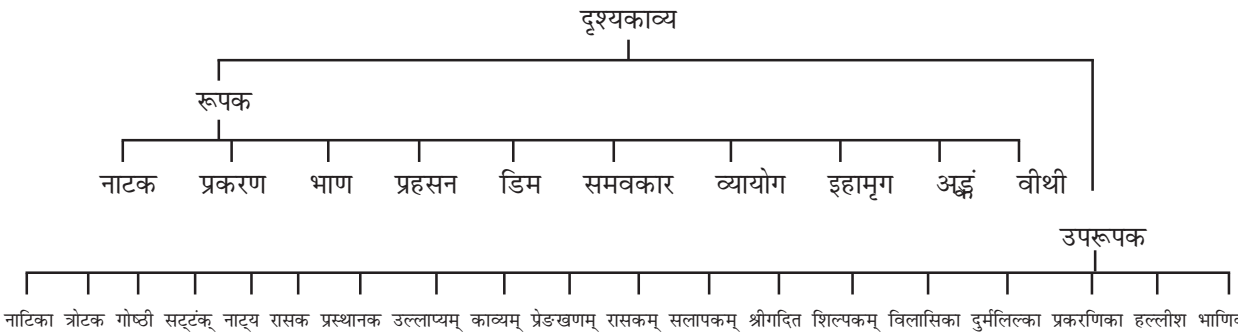

दृश्यकाव्य के अन्तर्गत आने वाले 'रूपक' में 'नाटक' का प्रथम स्थान है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक को दु:खी, आर्त तथा श्रान्त (थके हुए) लोगों के मनोरंजन का साधन बताते हुए लिखा है-

दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्।। (नाट्यशास्त्र 1/114)

इसका अर्थ यह है कि दु:ख से पीड़ित, परिश्रम से थके हुए, शोक से सन्तप्त असहाय जनों के लिए आराम एवं शान्ति देने वाला यह नाट्य मेरे द्वारा बनाया गया है। वस्तुत: भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का यही प्रयोजन है। उन्होंने कहा कि यह नाटक धर्म, यश और आयु का विवर्धक, हितकारी तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला एवं लोक व्यवहार का उपदेश देने वाला होगा-

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।

नाट्योत्पत्ति—भरत के नाट्यशास्त्र में नाटक को पंचम वेद कहा गया है जिसकी सृष्टि अन्य वेदों की भांति, इन्द्रसहित देवों की प्रार्थना पर, स्वयं ब्रह्म ने ही की है-

महेन्द्रप्रमुखैदेवैरुक्त: किल पितामह:।

क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।।

देवो की इस प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामग्री, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस को ग्रहण कर नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की थी-

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।

इस प्रकार नाट्य वेद की सृष्टि कर ब्रह्मा ने इन्द्रदेव से कहा कि वाक्यपटु, कार्यकुशल, आलस्यहीन एवं लोकशास्त्र व्यवहारज्ञ देवों द्वारा इसका अभिनय कराओ, पर देवराज द्वारा देवताओं की अभिनय के लिए असमर्थता प्रकट करने पर भरतपुत्रों को इसके अभिनय की शिक्षा दी गई और इन्द्रध्वजोत्सव में सर्वप्रथम नाट्यवेद का प्रयोग किया गया, इस प्रयोग में देवों का उत्कर्ष तथा दैत्यों का अपकर्ष दिखाया गया था अत: दैत्यों ने इसमें विध्न डाला तब इन्द्र ने इन विघ्नों से रक्षा के लिए विश्वकर्मा द्वारा नाट्यगृह की रचना कराई और ब्रह्मा ने दैत्यों को शान्त करने के लिए कहा कि यह देवों तथा दैत्यों दोनों के लिए ही है इसमें धर्म, क्रीड़ा, हास्य युद्धादि सभी सर्वोपयागी विषयों का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार जब ब्रह्मा के आदेशानुसार विश्वकर्मा द्वारा निर्मित नाट्यशाला में अमृतमंथन नामक समवकार तथा त्रिपुरदाह नामक डिम का अभिनय किया गया तब उसमे देवों और दैत्यों ने अपने-अपने भावों के तथा कर्मों के अनुरूप प्रदर्शन देखकर अति प्रसन्न होकर ब्रह्मा की बड़ी प्रशंसा की-

"अहो नाट्यमिदं सम्यक् त्वया सृष्टं महामते।।"

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति वेदों से ही हुई है। नाटक के प्रधानअंग-संवाद, अभिनय, रस, संगीत, नृत्य आदि सभी वेदों में पाये जाते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वेदों में प्राय: सभी नाटकीय तत्त्वों के बीज विद्यमान थे और उन्हीं का विकसित रूप आज संस्कृत नाटकों में पाया जाता है।

दृश्यकाव्य (नाटक) का महत्त्व

भरत ने नाट्य को 'सार्ववर्णिक वेद' कहा है क्योंकि अन्य वेद ऋगादि केवल द्विजमात्र के लिए ही उपयोगी होते हैं परन्तु नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के प्राणी कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इसका आनन्द ले सकता है। नाटक का प्रभाव किसी एक ही प्रकार की रुचि रखने वाले लोगों पर नहीं पड़ता बल्कि यह पूरे समाज को प्रभावित करता है। इसकी विषय-वस्तु तीनों लोकों की गतिविधियों से संबंधित होती है। यह लोकव्यवहार का अनुकरण प्रस्तुत

करने का माध्यम होता है। सम्पूर्ण विश्व की सुख-दु:ख संबंधी प्रवृत्तियों की लीला का चित्रण नाटक के द्वारा किया जाता है। इसीलिए भरतमुनि का कहना है कि कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो नाटक में प्राप्त नहीं होता अर्थात् जितना भी ज्ञानात्मक एवं कलात्मक वस्तु जगत् है वह सब ही नाटक के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। (नाट्यशास्त्र 1/114)

दृश्य काव्य को श्रव्य काव्य की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है क्योंकि श्रवण द्वारा रसानुभूति इतनी नहीं होती जितनी कि दर्शन द्वारा होती है। आप किसी के विषय में चाहें कितनी भी सुन्दर मनोरम शब्दों में बाते सुनें परन्तु आप उसका वैसा आनन्द नहीं ले सकते जैसा कि स्वयं उस विषय को देखकर ले सकते हैं। काव्य को सुनकर उसकी रसानुभूति के लिए उसके अर्थ को समझना आवश्यक होता है परन्तु दृश्यकाव्य अर्थात् नाटक में इसकी आवश्यकता नहीं होती। नाटक एक चित्र के समान होता है जिस प्रकार रंग बिरंगा चित्र दर्शक के चित्त को आनन्दित करता है उसी प्रकार नाटक भी पात्रों की वेशभूषा, रंगमंच की साजसज्जा से दर्शकों को रसानुभूति व अलौकिक आनन्द की प्राप्ति करवाता है। यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों के लिए भी श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य (नाटक) का आकर्षण विशेष प्रभावशाली होता है। इसीलिए कहा गया है-

"काव्येषु नाटकं रम्यम्।"

इस प्रकार नाटक न केवल आनन्द व रस ग्रहण का साधन है अपितु चारित्रिक विकास व जीवन को उच्च व आदर्श भी बनाता है।

संस्कृत नाटकों के प्रधान तत्त्व

संस्कृत नाटकों के तीन ही प्रधान तत्त्व माने गए हैं- वस्तु (कथावस्तु) नेता (नायक) तथा रस। नाटकों में इन तीन तत्त्वों का होना अनिवार्य होता है। नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में संस्कृत-नाटक के स्वरूप व लक्षण विस्तार से स्पष्ट किए गए हैं जैसे कि दशरूपक आदि ग्रन्थों में भी यही प्रमुख तत्त्व बताए गए हैं और उसमें प्राप्त विस्तृत विवेचना से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत नाटक रस पर आश्रित होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि श्रृंगार, करुण, वीर आदि इनमें से किसी एक रस को आधार भूत मानकर संस्कृत नाटक की रचना की गई है।

कथावस्तु भी इन नाटकों में लोक प्रसिद्ध आख्यानों पर आधारित है। संस्कृत नाट्य-साहित्य के सभी प्रसिद्ध नाटक राम कथा, महाभारत कथा अथवा उदयनादि राजाओं की लोक कथा को आधार बनाकर ही लिखे गए हैं।

संस्कृत नाटकों में पात्रों का चरित्र-चित्रण भी पात्रानुकूल ही किया गया है। नायक-नायिका के उदात्त व उदार चरित्र का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

रसानुभूति व आनन्द प्राप्ति ही नाटक का मुख्य प्रयोजन होने के कारण नाटककारों ने कथावस्तु व पात्रों के चरित्र-चित्रण पर इतना ध्यान नहीं दिया जितना कि रसानुकूल व आदर्शवादी वातावरण उपस्थित करने की ओर नाटककार की दृष्टि आबद्ध रही। कुछ नाटकों में यद्यपि ऐसा नहीं है परन्तु प्राय: अधिकांश प्रसिद्ध नाटकों में रस को ही प्रधानता दी गई है।

संस्कृत नाटकों की मान्यताएं

संस्कृत नाटकों की कुछ अपनी मान्यताएं हैं जो कि अन्य भाषा के नाटकों में नहीं मिलती अथवा उन्हें स्वीकार नहीं किया गया है। वे इस प्रकार हैं-

1. संस्कृत नाटक सुखान्त ही होते हैं दु:खान्त नहीं अर्थात् नाटक में नायक-नायिका का वियोग, उनकी हानि या कोई दु:खद घटना से नाटक का अन्त नहीं होता। नायक-नायिका का जीवन संघर्षमय दिखते हुए भी अन्त में उन्हें फलसिद्धि के द्वारा कष्ट से मुक्त कर आनन्द व प्रसन्नता दी जाती है। परन्तु ग्रीक नाटक प्राय: दु:खान्त ही होते हैं।

संस्कृत नाटकों का उद्देश्य दु:ख पीड़ित जनों को सुख शान्ति प्रदान करना है, इस उद्देश्य की प्राप्ति अन्त में प्राय: भरतवाक्य द्वारा दिखाई जाती है। 'भरतवाक्य' नाटक के अन्त में होता है जिनमें दर्शकों की तथा मानवमात्र के कल्याण की कामना की जाती है; कहीं कहीं नाटककार स्वयं भी अपनी मुक्ति की आकांक्षा प्रकट करता है, जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास।

2. संस्कृत नाटकों में मुख्य कथावस्तु यद्यपि ऐतिहासिक पौराणिक आख्यानों पर आधारित होती है परन्तु तत्कालीन समाज की आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों एवं अन्य प्रकार की समस्याओं का चित्रण एवं समाधान भी होता है। इस प्रकार नाटककार अपने युग के वातावरण को भी चित्रित करता है।

3. कथानक से सम्बद्ध पात्रों के चित्रण के अतिरिक्त नाटककार विद्या, कला, शिल्प विज्ञान आदि का भी यथास्थान उपयोग कर अपने समय की विविध मान्यताओं का भी वर्णन करता है। इसी प्रकार वह भारतीय शिष्टाचार, लोकव्यवहार, दर्शन, धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि का भी यथावसर परिचय देता है।

4. संस्कृत नाटकों में मानव जीवन के साथ-साथ प्राकृतिक जीवन का भी सफल चित्रण मिलता है। कुछ नाटकों में तो प्रकृति स्वयं एक पात्र बन गई है, कालिदास की शकुन्तला प्रकृति कन्या ही है। प्रकृति के भयावह और मनोरम दोनों प्रकार के चित्रों को चित्रित किया गया है।

5. रस निष्पत्ति ही संस्कृत नाटकों का प्राणतत्त्व है, रस ही उनकी आत्मा है। इसीलिए नाटककार का ध्यान सदा ही रसनिष्पत्ति पर केन्द्रित रहता है। रसों में वीर, शृंगार, करुण में से कोई एक रस प्रधान तथा शेष अंग रूप में यथावसर अभिव्यक्त किए जाते हैं।

6. संस्कृत नाटकों में कार्यान्विति अर्थात् कार्य की सिद्धि पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है।

7. इन नाटकों में विदूषक की कल्पना अद्वितीय है। शिष्ट हास्य तथा विनोद की सृष्टि के लिए संस्कृत नाटकों में सर्वत्र विदूषक की कल्पना की जाती है। यह विदूषक राजा का मित्र या सखा होता है, किन्तु दास नहीं होता।

8. संस्कृत नाटकों में वध, लम्बी यात्रा, विवाह, मरण युद्ध, नौका चलाना, भोजन, वस्त्र परिवर्तन आदि दृश्य नहीं दिखाए जाते हैं। इनकी सूचना मात्र दे दी जाती है, क्योंकि नाट्यशास्त्र के नियमानुसार इन दृश्यों को रंगमंच पर दिखाने की अनुमति नहीं है।

9. आकार में संस्कृत नाटक वैसे तो लघु ही होते हैं पात्रों की संख्या यद्यपि निश्चित नहीं होती परन्तु फिर भी कम ही पात्र प्रयुक्त होते हैं। अपवाद रूप केवल मृच्छकटिक वृहद् आकार वाला नाटक है जो कि ग्रीक नाटककार एसकिसल के तीन नाटकों के बराबर है।

10. संस्कृत नाटकों में गद्य तथा पद्य दोनों का ही आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है। कुछ नाटकों में पद्य गीतों का आधिक्य हो गया है जिससे उनकी अभिनेयेता में बाधा पड़ती है, ऐसे ही कुछ नाटकों को समीक्षकों ने नाट्यकाव्य कहा है। ऐसे नाटकों में जहाँ पद्यों का आधिक्य नाटकीय वैशिष्ट्य प्रयोजक होता है वहां वह नाटक के मूल तत्त्व में भी बाधा पहुँचाता है।

11. संस्कृत के सभी नाटक नाट्यशास्त्र द्वारा निर्दिष्ट नियमों का यथावत् पालन करते हैं। इसलिए इन नाटकों में नियमानुकूल नान्दी, प्रस्तावना, अंक अंकावतार, प्रवेशक, विष्कम्भक, भरतवाक्य, सन्धि (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण) संध्यङ्ग आदि का यथास्थान प्रयोग मिलता है। सभी नाटक अंकों में विभक्त किए गए हैं। अंक समाप्ति पर पात्रों का बहिर्गमन दिखाया गया है। संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं का प्रयोग किया गया है और नियमानुसार उच्चकुलीन राजा, ऋषि, विद्वान् आदि पात्र संस्कृत तथा शेष पात्र स्त्री पात्र, निम्न श्रेणी के पात्र प्राकृत बोलते हैं। इनके अतिरिक्त नाटकीय मुख्य तत्त्वों वस्तु, नेता और रस का परिपालन भी संस्कृत नाटकों में यथोचित ढंग से किया गया है अर्थात् कोई भी संस्कृत नाटक, नाट्यशास्त्र

द्वारा बताए गए नियमों की परिधि से बाहर नहीं जा सका है। भारतीय शिष्टाचार एवं आदर्श का सर्वत्र परिपालन किया गया है।

इस प्रकार इन मान्यताओं और विशेषताओं के अतिरिक्त और भी बहुत सी नाट्यकला संबंधी ऐसी बाते हैं जिनके कारण आज विश्व साहित्य में भारत के संस्कृत नाटकों का श्रेष्ठ स्थान है।

संस्कृत नाटक एवं नाटककार

संस्कृत नाटकों का आविर्भाव एवं विकास का इतिहास कई शताब्दियों का है। नाट्यसाहित्य के क्रमिक विकास से हम जान चुके हैं कि वैदिक साहित्य से नाट्य का जो बीज पनपा वही कालक्रम से विशाल वृक्ष के रूप मे हमारे सामने उपस्थित हुआ है। नाटकों के क्रमिक विकास में कतिपय तत्त्व वैदिक साहित्य से, कुछ इतिहास एवं पुराणों से तथा कुछ लोकगीत एवं सामूहिक उत्सवों से गृहीत हैं। इस प्रकार यह निश्चित है कि द्वितीय शतक ई.पू. में नाट्य तत्त्व पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुका था।

संस्कृत नाट्य-साहित्य में अनेक सुप्रसद्धि नाटकों की रचना सुप्रसिद्ध नाटककारों द्वारा की गई। जिनमें से भास, कालिदास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त, नारायण भट्ट एवं हर्षवर्धन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भास एवं कालिदास का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत के प्रथम नाटककार महाकवि भास

संस्कृत के सुप्रसिद्ध प्रथम नाटककार भास के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में अनेक प्रकार के प्रशंसा वाक्य प्राप्त होते हैं। जैसे कि हर्षचरित के प्रथम अंक में–

"सूत्राधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।। (1/15)

राजशेखर के शब्दों में–

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।।

इसी प्रकार दण्डी ने अवन्तिसुन्दरीकथा में कहा है–

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः।।

महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक की प्रस्तावना में भास की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि–

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

महाकवि कालिदास के इस कथन से ज्ञात होता है कि उनके समय तक भास के नाटक अधिक लोकप्रिय हो चुके थे। कालिदास के परवर्ती कवियों एवं आचार्यों ने भी भास को आदर की दृष्टि से देखा है इस प्रकार संस्कृत साहित्य के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने भी भास का महत्त्व स्वीकार किया है।

स्थितिकाल

भास की निश्चित तिथि के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने इनका समय ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया है। अन्तः एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर इनका समय ई. पू. चतुर्थ एवं पंचम शतक के मध्य निर्धारित किया गया है। अश्वघोष एवं कालिदास दोनों ही भास से प्रभावित हैं। अतः इनका दोनों का पूर्ववर्त्ती होना निश्चित है। कालिदास का समय ई.पू. प्रथम शती माना गया है। भास में अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता देखकर इनकी प्राचीनता सन्देह से परे सिद्ध हो जाती है। पाणिनि का समय 600

से 500 ई.पू. माना गया है अतः भास का समय 400 ई.पू. से बाद का नहीं हो सकता। भास ने अपने प्रतिमा नाटक में बृहस्पति के अर्थशास्त्र की चर्चा की है पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र की नहीं, पर कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इनके 'प्रतिज्ञा' नाटक से एक श्लोक उद्धृत किया है। अतः ज्ञात होता है कि यह कौटिल्य से पूर्ववर्ती थे। इसके अतिरिक्त भास के नाटकों में प्रसंगतः चित्रित समाज भी, षष्ठ से चतुर्थ शतक ई.पू. के भारत की ओर ही संकेत करता है और तत्कालीन सामाजिक समस्याएँ भी नन्दयुगीन ही प्रतीत होती है इन सब अन्तरंग एवं बहिरंग साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों ने महाकवि भास का समय चतुर्थ या पंचम शतक ई.पू. ही निर्धारित किया है।

रचनाएँ

भास के नाटकों का सर्वप्रथम टी. गणपति शास्त्री ने 1909 में पता लगाया। इन्हें पद्मनाभपुरम् के निकट मनल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पंचरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा ऊरुभङ्ग की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई। इन्हें 'दूतवाक्य' की एक खण्डित हस्तलिखित प्रति भी तालपत्र पर प्राप्त हुई थी। सभी हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। इसके पश्चात् गणपति शास्त्री को त्रिवेन्द्रम के राजा प्रसाद पुस्तकागार में प्रतिमा तथा अभिषेक नाटक की प्रतियाँ प्राप्त हुई। शास्त्री जी ने इनका सम्पादन कर 1912 ई. में तेरह नाटकों को प्रकाशित किया। ये सभी नाटक अनन्तशयन-संस्कृत ग्रन्थावली में प्रकाशित हुए हैं।

इन नाटकों का लेखक केवल भास ही हैं या अन्य कोई और भी। इस संबंध में विद्वानों के तीन वर्ग हैं-

प्रथम वर्ग के विद्वानों के मतानुसार ये सभी नाटक भासकृत ही हैं। इन नाटकों की रचना प्रक्रिया, भाषा एवं शैली के आधार पर इनका लेखक एक ही व्यक्ति ज्ञात होता है तथा ये सभी नाटक कालिदास के पूर्व के ही प्रतीत होते हैं। इन सभी नाटकों का रचयिता 'स्वप्नवासवदत्तम्' नामक नाटक का ही लेखक है।

द्वितीय वर्ग के विद्वान् इन नाटकों को भासकृत नहीं मानते और इनका रचयिता या तो 'मत्तविलासप्रहसन' का प्रणेता युवराज महेन्द्रविक्रम को या 'आश्चर्यचूडामणि' नाटक के लेखक शीलभद्र को मानते हैं। श्री बर्नेट का मत है कि इन नाटकों की रचना पाण्ड्य राजा राजसिंह प्रथम के शासन काल (675 ई.) में हुई थी। अन्य विद्वानों के अनुसार इन नाटकों का रचनाकाल सातवीं-आठवीं शताब्दी है और इनका रचयिता कोई दाक्षिणात्य कवि था। प्रो. सिलवां लेवी, विंटरनित्स तथा सी.आर. देवधर इसी मत के पोषक हैं।

तृतीय वर्ग ऐसे विद्वानों का है जो इन नाटकों का कर्त्ता तो भास को ही मानता है किन्तु इनके वर्तमान रूप उनका संक्षिप्त एवं रंगमंचोपयोगी रूप मानता है। ये विद्वान हैं डा. लेस्नी, प्रिन्ट्ज, बैनर्जी, शास्त्री तथा सुखथ्नकर आदि।

इन मतों में अधिकतर विद्वान् प्रथम मत का ही समर्थन करते हैं। डा. पुसालकर एवं श्री ए.एस.पी. अय्यर ने अनेक प्रमाणों के आधार पर प्रथम मत की ही पुष्टि की है। जो कि इस प्रकार है-

1. भास के सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः से प्रारम्भ होते हैं किन्तु परवर्ती नाटकों में यहां तक कि कालिदास के नाटकों में भी नान्दी पाठ के बाद यह वाक्य होता है। इसीलिए भास के नाटक 'सूत्रधारकृतारम्भैः' कहे जाते हैं।
2. इनमें प्रस्तावना का प्रयोग न होकर सर्वत्त 'स्थापना' का व्यवहार किया गया है। 'स्थापना' में नाटक एवं नाटककार का भी संकेत नहीं है। अन्य संस्कृत नाटकों में प्रस्तावना में नाटक एवं नाटककार के विषय में भी कहा जाता है। अतः ये नाटक शास्त्रीय परम्परा के पूर्व रचित हुए हैं।
3. सभी नाटकों के भरतवाक्य का प्रयोग 'इहामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः' या इसी भाव के पद्य से होता है।
4. इन नाटकों में भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतः निर्वाह नहीं किया गया है। भरत जिन दृश्यों को रंगमंच पर वर्जित मानते हैं उन्हें भी इन नाटकों में दिखाया गया है। इससे यह सिद्धि होता है कि ये नाटक उस समय लिखे गए थे जबकि नाट्यशास्त्र के सिद्धांत पूर्णरूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पाए थे।
5. सभी नाटकों के प्रारम्भिक श्लोकों में मुद्रालंकार दिखाई पड़ता है और इनमें समान संघटना प्राप्त होती है।

6. राजशेखर प्रभृति कई आचार्यों ने इन नाटकों में से एक नाटक 'स्वप्नवासदत्तम्' का उल्लेख किया है।
7. भासकृत नाटकों के कई उद्धरण अनेक अलंकार ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। जैसे वामन ने स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं चारुदत्त के उद्धरण दिए हैं तथा भामह ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण की पंक्तियों को उद्धृत किया है। दण्डी ने लिम्पतीव तमोऽंगानि वर्षतीवांजनं नभः' आदि पद्यों को उद्धृत किया है। अभिनवगुप्तकृत 'अभिनवभारती' एवं लोचन में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया गया है।
8. इन नाटकों की भाषा में अनेक अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं, अतः इनकी संस्कृत को शुद्धशास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। इनकी शैली सरल है एवं इनमें कालिदासीय स्निग्धता का अभाव है। इनमें प्रयुक्त प्राकृत भी कालिदास से प्राचीन सिद्ध होती है। तथा इनकी भाषा एवं शैली में व्यापक समानता दिखाई देती है।
9. सभी नाटकों में समान शब्दों एवं दृश्यों का विधान किया गया है। बाली, दुर्योधन तथा दशरथ सभी को मृत्यु के पश्चात् नदी का दर्शन करने का वर्णन है तथा सभी के लिए देव विमान आते हैं।
10. कई नाटकों में समान वाक्य प्रयुक्त किए गए हैं। जैसे जन-समुदाय के राजमार्ग पर बढ़ जाने पर मार्ग को साफ रखने के लिए इस वाक्य का प्रयोग 'उस्सरह उस्सरह अय्या! उस्सरह!
11. इनमें समान नाटकीय घटनाएँ भी मिलती हैं। जैसे कि 'अभिषेक' एवं 'प्रतिमा' नाटकों में सीता रावण की प्रार्थना को अस्वीकार कर उसे शाप दे देती है तथा 'चारुदत्त' नाटक में वसन्तसेना द्वारा शकार के प्रणय-निवेदन को अस्वीकृत कर देने का वर्णन है।
12. प्रायः सभी नाटकों में युद्ध की सूचना भाट एवं ब्राह्मण आदि द्वारा दी गयी है। भावों की समानता भी सभी नाटकों में दिखाई पड़ती है। इन समानताओं के कारण सभी नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति सिद्ध होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ये तेरह नाटक भास द्वारा ही लिखे गए हैं। डा. कीथ ने भी इन तेरह नाटकों का रचयिता एक व्यक्ति अर्थात् महाकवि भास को ही माना है और टी. गणपति शास्त्री के इस अनुसंधान पर अपनी सम्मति प्रकट की है।

महाकवि भास के ये 13 नाटक रामकथा महाभारत व लोकविश्रुत कथानकों पर आधारित हैं। अतः इनको इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है-

1. रामकथाश्रित - प्रतिमा नाटक, अभिषेक, 2. महाभारताश्रित - पंचरात्रम्, मध्यम व्यायोग, घटोत्कच, 3. भागवत पुराणाश्रित, 4. लोककथाश्रित, 5. उदयन कथाश्रित, 6. कर्णभार, 7. दूतवाक्यम्, 8. ऊरुभङ्ग, 9. बालचरितम्, 10. दरिद्रचारुदत्तम्, 11. अविमारक, 12. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, 13. स्वप्नवासदत्तम्।

नाट्यकला

नाटकीयता की दृष्टि से भास के नाटकों का वस्तु क्षेत्र विविध है तथा इससे उनकी प्रतिभा की मौलिकता सूचित होती है। इतना सब होने पर भी सभी नाटकों में समान रूप से नाट्य कौशल नहीं दिखाई पड़ता। रामायण संबंधी नाटकों का कथा-संविधान शिथिल है किन्तु महाभारत के आधार पर निर्मित नाटक इस दोष से रहित हैं और उनमें भास की प्रतिभा का वैशिष्ट्य प्रदर्शित होता है। इन्हें अपेक्षाकृत सर्वाधिक सफलता लोक कथाओं के आधार पर निर्मित प्रेमश्रावण नाटकों में मिली है जिनमें कवि ने उदयन के प्रेम का आकर्षक चित्र खींचा है। इस दृष्टि से 'स्वप्नवासवदत्तम्' एवं 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' भास के सर्वोत्तम नाटक सिद्ध होते हैं और इनमें भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' का स्थान ऊपर है।

नाटकों में प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमा तथा स्वप्नवासवदत्तम् तो पूर्ण विकसित नाटक हैं पर मध्यमव्यायोग, दूत घटोत्कच, दूतवाक्य, कर्णभार, ऊरुभङ्ग केवल एक-एक अंक के नाटक हैं अतः इन्हें एकांकी नाटक कहा जाता है, इन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है- इनकी अभिनेयता। इन नाटकों को रंगमंच पर भलीभाँति दिखाया जा सकता है, इस प्रकार महाकवि भास ही वे पहले नाटककार है जिन्होंने सर्वप्रथम एकांकी रूपकों का प्रणयन किया है। अविमारक,

दरिद्रचारुदत्त, प्रतिज्ञा एवं स्वप्नवासवदत्तम् नाटक वस्तुतः कवि कल्पना प्रसूत है; यद्यपि इनमें लोक प्रचलित कथा का आश्रय लिया गया है।

नाटककार भास ने कतिपय नाटकों में मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया है। जैसे कि प्रतिमा नाटक में प्रतिमा वाला सम्पूर्ण प्रसंग भास की नवीन कल्पना है। विस्तृत क्षेत्र से कथानक ग्रहण करने के कारण इनके पात्रों की संख्या अधिक है और उनकी कोटियां भी अनेक हैं। इतने अधिक पात्रों के चरित्र का वर्णन कर इन्होंने दृष्टि विस्तार एवं विशद अनुभव का परिचय दिया है। भास के सभी पात्र प्राणवन्त एवं इसी लोक के प्राणी हैं, उनमें कृत्रिमता नाममात्र भी नहीं है। इतना अवश्य है कि ब्राह्मणीय संस्कृति एवं वैदिक धर्म का प्रभाव कई नाटकों पर अपनी इच्छा से ही प्रदर्शित कर दिया गया है। 'मध्यमव्यायोग' एवं 'अविमारक' दो नाटक ऐसे ही हैं। इनके पात्र सर्वत्र उदात्त आदर्शों से प्रेरित दिखाए गए हैं। इन्होंने यथासंभव अपने पात्रों के उत्कृष्ट चरित्र को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है और इसके लिए इन्हें कथानक में भी परिवर्तन करना पड़ा है। पात्रों के संवाद नाटकीय विधान के सर्वथा अनुरूप है। भास ने संवादों की योजना में विशेषरूप से दक्षता दिखाई है। इनके संवाद लघु हैं तथा उनमें वाग्विस्तार का परिहार सर्वत्र दिखाई पड़ता है। वार्तालापों के द्वारा ही कवि सभी दृश्यों को उपस्थित करता है और सरल शब्दावली का नियोजन कर संवादों को यथासाध्य सार्वजनीन बनाया गया है। रस परिपाक की दृष्टि से भी इनके नाटक उत्तम हैं। महाकवि भास ने नौ रसों का प्रयोग कर अपनी नाट्यकुशलता प्रदर्शित की है। मुख्यरूप से इन्होंने वीर, श्रृंगार एवं करुण रस का विशेष रूप से वर्णन किया है। इनका हास्य वर्णन अत्यन्त उदात्त है और इसका प्रयोग विदूषक के माध्यम से किया है। इनके सभी नाटक अभिनय कला की दृष्टि से सफल सिद्ध होते हैं। कथानक, पात्र, भाषा-शैली, देशकाल एवं संवाद किसी के भी कारण उनकी अभिनेयता में बाधा नहीं पड़ती। इनके नाटक उस काल के हैं जब नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, फलतः इन्होंने कई ऐसे दृश्यों का भी विधान किया है जो शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित है जैसे वध, अभिषेक आदि। परन्तु ये दृश्य इस प्रकार रखे गए हैं कि इनके कारण नाटकीयता में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।

भाषा-शैली

भास की शैली सरल एवं अलंकार रहित व स्वाभाविक है। इनकी कवित्वशक्ति भी उच्चकोटि की है। इनके सभी पद्य घटनाओं एवं पात्रों से सम्बद्ध हैं और अलग से लिखे गए स्वतन्त्र पद्यों की तरह नहीं लगते। अपने वर्ण्य-विषयों को इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। किसी दृश्य का वर्णन करते समय ये उसके प्रत्येक पक्ष को अत्यधिक सूक्ष्मता के साथ प्रदर्शित करते हैं और पाठक को उसका पूर्णरूप से अर्थ ग्रहण हो जाता है। इनका प्रकृति वर्णन अत्यन्त स्वभाविक एवं आकर्षक है। जैसे सांयकाल का वर्णन स्वप्नवासवदत्तम् मे कुछ इस प्रकार किया है—

"खगा वासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ।। (1/16)

इसमें कहा गया है कि सायंकाल हो रहा है। पक्षी अपने नीड़ों की ओर चले गए हैं। मुनियों ने जलाशय में स्नान कर लिया है। सायंकालीन अग्निहोत्र के लिए जलाई गई अग्नि सुशोभित हो रही है और उसका धुँआ मुनिवन में फैल रहा है। सूर्य भी रथ से उतर गया है उसने अपनी किरणें समेट ली हैं, और रथ को लौटाकर वह धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रविष्ट हो रहा है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि भास में वह कवित्व एवं नाट्य कला प्रवीणता विद्यमान थी जो कि एक सिद्धहस्त नाटककार के लिए अपेक्षित होती है उनके नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' सर्वोत्कृष्ट नाटक है जिसके कथानक का उपयोग परवर्ती नाटककारों ने भी किया है और उनके दरिद्रचारुदत्त नाटक के आधार पर मृच्छकटिक नाटक की रचना की गई है। नाट्यकला के क्षेत्र में भास अपना उच्च स्थान रखते हैं, राजशेखर ने कवि प्रशस्ति में इनका नामोल्लेख किया है और जयदेव (वैदर्भ) ने प्रसन्नराघव में भास को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अतः कहा जा सकता है कि भास अपने समय के उत्कृष्ट नाटककार थे।

कविकुलगुरु कालिदास

चतुर्मुखी काव्य प्रतिभा से सम्पन्न कालिदास न केवल उच्चकोटि के काव्यकार ही हैं अपितु वे नाट्यक्षेत्र के अद्वितीय नाटककार भी माने जाते हैं।

कालिदास के जीवन के विषय में यद्यपि कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है परन्तु इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में इनके जो विचार व्यक्त हैं उनसे इनके स्वभाव एवं जीवन के विषय का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे कि रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने अपनी विनम्र प्रकृति का परिचय दिया है। (रघु 1-(2-4) जिसमें भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र प्रतिध्वनित होता है कि उच्च पद पर अधिष्ठित होकर भी गर्व न करे। अपनी प्रतिभा को तुच्छ सिद्ध करते हुए कालिदास रघु जैसे तेजस्वी कुल के वर्णन में अपने को असमर्थ पाते हैं तथा तिनकों से निर्मित छोटी नाव के द्वारा सागर को पार करने की तरह अपनी मूर्खता प्रदर्शित करते हैं-

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीषुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।

कविकुलगुरू कालिदास के जीवन एवं काल के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। इनके जीवन से सम्बद्ध कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं-

एक किंवदन्ती के अनुसार कालिदास बाल्यावस्था में अत्यन्त मूर्ख थे। विदुषी विद्योत्तमा नामक राजकुमारी के साथ इनका विवाह धोखे से करवा दिया गया। किन्तु विवाह के पश्चात् पत्नी द्वारा तिरस्कृत होने पर कालिदास ने कालीदेवी की उपासना की और विद्या का वरदान प्राप्त किया। कालिदास ने घर आकर दरवाजा खटखटाया और कहा- 'अनावश्तकपाटं द्वारं देहि' अर्थात् दरवाजा खोलो। पत्नी ने पूछा- 'अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः' अर्थात् क्या वाणी (भाषा) में कुछ सुधार (विशेषता) हो गया है। कालिदास ने पत्नी के इस वाक्य से अत्यन्त प्रभावित होकर इसके तीनों शब्दों से प्रारम्भ होने वाले तीन अलग-अलग काव्यों की रचना की- 'अस्ति' शब्द से कुमारसम्भवम् महाकाव्य (अस्ति उत्तरस्याम् दिशि...) 'कश्चित्' शब्द से मेघदूत खण्डकाव्य (कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा...) और 'वाक्' शब्द से रघुवंश महाकाव्य (वागर्थाविव...)।

एक लोक प्रचलित धारणा के अनुसार कालिदास प्रथम शताब्दी ई. पूर्व के विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में से एक थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि ये राजा भोज के राजकवि थे। भोजप्रबन्ध में राजा भोज और कालिदास की मित्रता का उल्लेख है। ऐसा जान पड़ता है कि ये किसी राजा के सम्पर्क में अवश्य रहे थे।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार लंका के राजा कुमारदास की कृति 'जानकीहरण' की प्रशंसा करने पर ये राजा द्वारा लंका बुलाए गए थे। इसी प्रकार इन्हें 'सेतुबन्ध' महाकाव्य के प्रणेता प्रवरसेन का मित्र कहा जाता है एवं ये मातृचेष्ठ से अभिन्न माने जाते हैं।

जन्म-स्थान एवं स्थितिकाल

कालिदास के जन्म स्थान के विषय में भी कोई निश्चित मत नहीं है। कोई इन्हें बंगाली, कोई काश्मीरी, कोई मालव निवासी, कोई मैथिल एवं कोई बक्सर के पास का रहने वाला बताता है। कालिदास की कृतियों में उज्जैन के प्रति अधिक मोह प्रदर्शित किया गया है अतः अधिकांश विद्वान् इन्हें मालव निवासी मानने के पक्ष में हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार इनकी जन्मभूमि काश्मीर और मालवा (उज्जैन) कर्मभूमि थी।

कालिदास के स्थिति काल को लेकर भारतीय तथा पाश्चात्य पण्डितों में अत्यधिक वाद-विवाद हुआ है। इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक माना जाता रहा है। भारतीय जनश्रुति के अनुसार महाकवि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। इनके ग्रन्थों में भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। कहा जाता है कि 'शकुन्तला' का अभिनय विक्रम की सभा में ही हुआ था। 'विक्रमोर्वशीय' में भी विक्रम का नाम उल्लिखित है। 'अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः' इस वाक्य से भी ज्ञात होता है कि कालिदास का विक्रम से संबंध रहा होगा। 'रामचन्द्रमहाकाव्य' के इस कथन से भी विक्रम के साथ महाकवि के संबंध की पुष्टि होती है-

("ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीतः शकारातिनां।")

इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास विक्रम की सभा में रहे होंगे।

कालिदास के स्थिति काल के विषय में तीन मत प्रधान हैं-

(क) कालिदास का आविर्भाव षष्ठ शतक में हुआ था।

(ख) इनकी स्थिति गुप्तकाल में थी।

(ग) विक्रमसंवत् के आरम्भ में ये विद्यमान थे।

प्रथम मत के पोषक फर्ग्युसन, हांनर्ली आदि विद्वान हैं। इनके मतानुसार मालवराज यशोधर्मन के समय में कालिदास विद्यमान थे। इन्होंने छठी शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त कर उसकी स्मृति में 600 वर्ष पूर्व की तिथि देकर मालव संवत् चलाया था। यही संवत् आगे चलकर विक्रम संवत् के नाम से प्रचलित हुआ। इन विद्वानों ने 'रघुवंश' में वर्णित हूणों की विजय के आधार पर कवि का समय छठी शताब्दी माना है-

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटनादेशि बभूव रघुचेष्टिम्।। (4/68)

परन्तु यह मत अमान्य है क्योंकि (473 ई.) कुमारगुप्त की प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि की रचना में ऋतुसंहार के कई पद्यों का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।

द्वितीय मतानुसार कालिदास गुप्त युग में हुए थे। इस संबंध में भी दो मत हैं- प्रथम मतानुसार कालिदास राजा कुमारगुप्त के राजकवि थे तथा द्वितीय मत में इन्हें (राजा) चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना जाता है। प्रो. के. बी. पाठक ने इन्हें स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन कवि माना है। इनके अनुसार बल्लभदेव कृत निम्नांकित श्लोक ही इसके मत का आधार है-

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कंधांल्लग्नकुंकुमकेसरान्।।

पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें शकों को पराजित कर भारत से निकालने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघुविजय समुद्रगुप्त की दिग्विजय से साम्य रखता है तथा इन्दुमती के स्वयंवर में प्रयुक्त उपमा के वर्णन में चन्द्रगुप्त के नाम की ध्वनि निकलती है। 'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः, इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै' इसमें चन्द्रमा एवं इन्दु शब्द चन्द्रगुप्त के द्योतक माने गए हैं परन्तु यह मत भी अप्रमाणित है क्योंकि द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे और इनसे भी प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले एक विक्रम का पता लगता है, अतः कालिदास की स्थिति गुप्तकाल में नहीं मानी जा सकती है।

तृतीयमत के अनुसार कालिदास ईसा के 58 वर्ष पूर्व माने जाते हैं। कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में प्रमुख माने गए हैं। हाल की गाथा 'सप्तशती' में दानशील विक्रम नामक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। इस पुस्तक का रचनाकाल स्मिथ के अनुसार 70 ई. के आसपास है।

विद्वानों ने इसके आधार पर विक्रम का समय एक सौ वर्ष पूर्व माना है। इसी विक्रमादित्य को 'शकारि' की उपाधि प्राप्त हुई थी। ईसा के 150 वर्ष पूर्व शकों के भारत पर आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है। अतः इससे 'शकारि' उपाधि की भी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। भारतीय विद्वानों ने इस विक्रम को ऐतिहासिक व्यक्ति मानकर

उनके दरबार में कालिदास की स्थिति स्वीकार की है। अभिनन्द ने अपने 'रामचरित' में इस बात का उल्लेख किया है कि कालिदास को शकारि द्वारा यश प्राप्त हुआ था।

("ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयोः नीतः शकारातिनां।")

कालिदास के आश्रयदाता विक्रम का नाम महेन्द्रादित्य था। कवि ने अपने नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में अपने आश्रयदाता के नाम का संकेत किया है। बौद्धकवि अश्वघोष ने, जिनका समय विक्रम का प्रथम शतक है, कालिदास के अनेक पद्यों का अनुकरण किया है, इससे कालिदास का समय विक्रम संवत् की प्रथम शताब्दी निश्चित होता है।

इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर भारतीय विद्वान् कालिदास की स्थिति को प्रथम शती में प्रमाणित करते हैं। परन्तु इस मत के विरुद्ध भी अनेक आपत्तियां है और न केवल पाश्चात्य अपितु विद्वद्वर मिराशी आदि कुछ भारतीय विद्वान् भी कालिदास की स्थिति गुप्तकाल में ही मानते हैं। वस्तुतः यह एक विवादग्रस्त विषय है।

रचनाएँ

कालिदास की सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें चार काव्य एवं तीन नाटक हैं। जो कि इस प्रकार हैं-

काव्य—ऋतुसंहार (खण्डकाव्य), मेघदूत (खण्डकाव्य), कुमारसंभव (महाकाव्य), रघुवंश (महाकाव्य)

नाटक—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय एवं अभिज्ञानशाकुन्तल।

नाट्यकला

कालिदास की रचनाओं में नाट्यकला का चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। मौलिकता की दृष्टि से इनके नाटक अद्वितीय हैं। नाटककार की लोकप्रियता का कारण प्रसादपूर्ण लालित्य युक्त वैदर्भी शैली ही है। प्रसिद्ध ही है कि 'वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।' कवि की शैली व्यंजनावृत्ति पर आश्रित है। किसी भी भाव के चित्रण के लिए एक अभूतपूर्व शैली का आश्रय लेकर विषय को शब्दों मे कहने की अपेक्षा व्यंजना वृत्ति से उसकी ओर संकेत मात्र कर देते हैं अर्थात् थोड़े शब्दों में गम्भीर भावों की अभिव्यंजना करते हैं।

रस की दृष्टि से महाकवि कालिदास रस सिद्ध कवीश्वर हैं। इनके नाटकों में अभिज्ञानशाकुन्तल का अंगी श्रृंगार है, इसमें श्रृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही रूपों का परिपाक हुआ है। किन्तु इनका श्रृंगार सीमित, पवित्र एवं सुरूचिपूर्ण है। श्रृंगार रस के अतिरिक्त इनके इस नाटक में करुण रस की भी अवतारणा हुई है। यह करुण रस भी मार्मिक है। हास्य रस की अभिव्यंजना उनके नाटकों में होती है। किन्तु यह सर्वत्र परिष्कृत एवं शिष्ट हास्य होता है। इस हास्य रस की अवतारणा के लिए ही इनके नाटकों में विदूषक की भूमिका है। शाकुन्तलम् नाटक में सिंह शिशु क्रीड़ा मे संलग्न सर्वदमन की अवतारणा वात्सल्य रस की दृष्टि से हुई है। साथ ही, भयानक, वीर, एवं अद्भुत रस का चित्रण भी इनके नाटकों में प्राप्त है।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी कालिदास के नाटक सफल हैं। इनकी प्रकृति मूल, चेतनाहीन होकर भी सजीव संवेदनशील है। कवि के प्रकृति चित्रण मे निरीक्षण की सूक्ष्मता, नवीनता एवं अनुरूपता सर्वत्र परिलक्षित होती है। शाकुन्तलम् नाटक तो प्रकृति का ही चित्र है। कवि के प्रकृति के चित्र बिम्बग्रहण करने में पूर्णतः समर्थ है।

भाषा पर कालिदास का असामान्य अधिकार है। भाषा की सरलता, स्वाभाविकता, कोमलता, प्रवाह एवं प्रसाद की दृष्टि से कवि सर्वश्रेष्ठ है। इनकी भाषा में जटिल समस्त पदों का सर्वथा अभाव है। भाषा सर्वत्र पात्रों तथा विषय के अनुकूल एवं भावाभिव्यक्ति में सफल है। अलंकारों का प्रयोग भी भाव सौन्दर्य की अभिवृद्धि तथा रस निष्पत्ति की दृष्टि से किया है जो कि स्वाभाविक है। उपमा अलंकार के प्रयोग में तो कालिदास अनुपम हैं। इनके विषय में 'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति सर्वविदित ही है। अर्थान्तरन्यास के द्वारा जीवन के सत्यों का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार कालिदास का अलंकार प्रयोग रस निष्पत्ति एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है।

चरित्र चित्रण के द्वारा कालिदास ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि के द्वारा चित्रित चित्र नित्य नूतन एवं चिर सुन्दर हैं। भारतीय संस्कृति के अनुरूप इनके पात्र विश्वकल्याण कामना से पूर्ण हैं।

कालिदास की इन नाटकीय विशेषताओं के आधार पर ही मोनियर विलियम का यह कथन है कि-

"कल्पनाशक्ति की प्रबलता और मानवीय अन्तर का उत्कृष्ट ज्ञान, रचना चातुर्य आदि गुण कालिदास के इतने उन्नत थे कि उन्हें संसार का एकमात्र महापुरुष तथा भारत का शेक्सपीयर ही कहना चाहिए।"

विलियम जोन्स इन्हें भारतीय शेक्सपीयर कहते हैं।

भास एवं कालिदास

दृश्यकाव्य के साहित्य में भास एवं कालिदास दोनों ही मूर्धन्य नाटककार हैं। इन दोनों की नाट्य कला में जो अन्तर है उसका कारण यह है कि भास के समय में नाट्यकला इतनी विकसित नहीं हुई जितनी कि कालिदास के समय में इसका विकास देखने को मिलता है। यद्यपि भास के अधिकांश नाटक रंगमंच के उपयुक्त भी हैं तथापि इनमें कालिदास के नाटकों जैसा रचना कौशल नहीं है, कालिदास के नाटकों में शाकुन्तल ही अभिनय योग्य है। यद्यपि भास के नाटकों के कथानक भी रामायण, महाभारत तथा बृहत्कथा से लिए गए हैं फिर उनमें कालिदास के नाटकों जैसे बुद्धि कौशल, नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों का पालन नाटकीयता एवं कलात्मकता देखने को नहीं मिलती। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कालिदास के नाटकों की तुलना में भास के नाटक इतने प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो सके क्योंकि नाट्यकला की दृष्टि से वे इतने परिपक्व नहीं हैं।

भाषा की दृष्टि से भी भास के नाटकों में कई प्रकार के अशुद्ध प्रयोग मिलते हैं जैसे ज्ञायतां कस्त्र पुत्रेति, अपृच्छ पुत्रकृतकान्, रुदन्तीम्, गृह्य समाश्वासितुम् इत्यादि पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं। विद्वानों का कहना है कि ऐसा इसलिए है क्योंकि भास के समय ऐसे नियमों का पालन करना अनिवार्य नहीं होगा। दूसरी ओर कालिदास के नाटकों की भाषा पूर्णतया पाणिनीय व्याकरण सम्मत एवं निर्दोष है। यद्यपि भास के नाटकों की भाषा कालिदास की भाषा की अपेक्षा सरल है तथापि उसमे कालिदास जैसा लालित्य, सुकुमारता एवं सरसता नहीं है। यद्यपि भास में शास्त्रीय दृष्टि है, कवित्व है और कहीं कहीं अर्थ गाम्भीर्य भी है पर कालिदास जैसा रचना कौशल नहीं और न उन जैसी कल्पना चातुरी एवं नवनवोन्मेषशालिनी नाट्य प्रतिभा ही है।

भास और कालिदास में कई स्थानों पर शब्द साम्य तथा भाव साम्य देखा जाता है पर कालिदास ने उन शब्दों, वाक्यों या भावों को इस प्रकार अपनाया है कि वे सर्वथा नवीन ही लगते हैं। जैसे-

'अथवा सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम्'-प्रतिमानाटक (भास)

'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'- अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास)

'वाचानुवृत्तिः खलु अतिथिसत्कारः'- प्रतिमानाटक (भास)

'भवतीनां सूनृत्यैव गिरा कृतमातिथ्यम्'- अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास)

इन उदाहरणों से यह भी ज्ञात होता है कि भास की अपेक्षा कालिदास की शब्द योजना में मधुरता एवं सौंदर्य का समावेश है। पात्रों के चित्रण एवं काल्पनिक प्रसंगों के प्रस्तुतीकरण में भी भास की अपेक्षा कालिदास अधिक सफल रहे हैं। उन्होंने काल्पनिक प्रसंगों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे सत्य से प्रतीत होते हैं और उनके पात्र भी सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस प्रकार भास एवं कालिदास यद्यपि दोनों ही उच्च कोटि के नाटककार है परन्तु कुछ क्षेत्रों में कालिदास की नाट्यकला भास की नाट्यकला से अधिक लोकप्रिय है।

पाठ–2

महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं उसका चतुर्थ अङ्क (सामान्य परिचय)

"कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्"– यह उक्ति स्पष्ट करती है कि यद्यपि कालिदास की सभी रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की हैं परन्तु उनमें से अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो कालिदास की काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद है। इनका यह कीर्तिस्तम्भ रूप अमर नाटक विश्व-प्रसिद्ध नाटक माना जाता है। देशी और विदेशी समीक्षकों की सम्मति में अभिज्ञानशाकुन्तल से उत्तम कोई भी विश्व का नाटक नहीं है। जर्मन महाकवि गेटे के शब्दों में-

"यौवन रूप वासन्तिक कुसुम सौरभ और प्रौढ़त्व रूप ग्रीष्म के मधुर फलों को अथवा अमृतवत् मानस को संतृप्त एवं विमुग्ध करने वाली किसी अन्य वस्तु को देखना चाहते हो अथवा पार्थिव ऐश्वर्य एवं स्वर्गीय सुषमा का अपूर्व सम्मिलन यदि एक स्थान पर देखना है तो अभिज्ञानशाकुन्तल का रसास्वादन कीजिए"।

महाकवि गेटे के ये शब्द अभिज्ञानशाकुन्तल की सर्वोत्कृष्टता के प्रमाण हैं। यद्यपि कालिदास के "विक्रमोर्वशीयम्" तथा मालविकाग्निमित्रम् ये दो नाटक और भी हैं तथापि अभिज्ञान शाकुन्तल उनकी अद्वितीय सर्वातिशायिनी रचना है। इसीलिए विद्वानों ने कहा है-

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुथोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

अभिज्ञानशाकुन्तल के कथानक का स्रोत

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रस्तुत कथानक महाभारत के आदि पर्व में लगभग 200 श्लोकों में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से लिया है पर उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति से इसमें पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है और आवश्यकतानुसार नवीन प्रसंगों को जोड़ दिया है। पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में भी यह कथा मिलती है परन्तु अधिकतर विद्वानों के मतानुसार पद्मपुराण अभिज्ञानशाकुन्तल से परवर्तिनी रचना है। इसलिए उसे अभिज्ञानशाकुन्तल का आधार नहीं माना जा सकता। सूक्ष्मता से यदि हम देखें तो शकुन्तलोपाख्यान के बहुत से अंश अभिज्ञानशाकुन्तल के अनुवाद मात्र लगते हैं। शेष अंशों पर महाभारत का प्रभाव लगता है।

महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान की कथा

एक बार चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में प्रविष्ट हुए। उन्होंने आश्रम में प्रवेश करके आवाज लगाई। उस समय कण्व की अनुपस्थिति में उनकी धर्म पुत्री शकुन्तला ने उनका सत्कार किया तथा राजा के पूछने पर अपने जन्म की कथा उनसे कह दी। उसे क्षत्रिय कन्या जानकर राजा ने उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया शकुन्तला ने कहा यदि आपका उत्तराधिकारी मेरा पुत्र हो तो मैं इस शर्त पर विवाह कर सकूंगी। जब राजा ने उसका प्रस्ताव मानने का वचन दिया तो दोनों ने गन्धर्व रीति से विवाह कर लिया। वह शकुन्तला को आश्वासन देकर गया कि मैं शीघ्र ही तुम्हें बुलाने के लिए सेना भेजूंगा, पर वह रास्ते में सोचता गया कि कहीं कण्व यह बात जानकर मुझ पर रुष्ट तो नहीं हो जाएगा। राजा के जाने के बाद कण्व ऋषि आश्रम में आए और तपोबल से सारी घटना को जानकर शकुन्तला के गन्धर्व विवाह की स्वीकृति दे दी। कुछ समय के पश्चात् शकुन्तला ने एक शिशु को जन्म दिया जो 6 वर्ष का होकर अपने पराक्रम से सिंह के साथ खेलने लगा। नौ वर्ष से अधिक शकुन्तला को अपने यहां रखना उचित न मानकर ऋषि ने उसे पुत्र सहित कुछ तपस्वियों के साथ दुष्यन्त की राजधानी में भेज दिया। दुष्यन्त ने शकुन्तला एवं उसके पुत्र को अपरिचित बता कर उन्हें स्वीकार नहीं किया। जब शकुन्तला जाने को तैयार हुई तब उसी समय आकाशवाणी हुई कि शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है और सर्वदमन तुम्हारा पुत्र है। ऐसा सुनकर पुरोहित और मन्त्रियों की राय से राजा ने उन्हें अपना लिया। उसने लोगों से कहा कि मैं सारा वृत्तान्त जानता था पर यदि मैं पहले ही इन्हें स्वीकार कर लेता तो आप लोग शंका कर सकते थे, किन्तु आकाशवाणी के द्वारा देवताओं की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर इनकी शुद्धता प्रकट हो गई है।

पद्मपुराण के आदिपर्व की कथा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पद्मपुराण की कथा का कुछ भाग महाभारत पर और अधिकतर भाग अभिज्ञानशाकुन्तल पर आधारित है। गन्धर्व विवाह की घटना तक का वृत्तान्त अभिज्ञानशाकुन्तल और महाभारत में समानता रखता है परन्तु एक दो अन्तर उल्लेखनीय हैं-

1. महाभारत में शकुन्तला स्वयं अपने जन्म की कथा सुनाती है परन्तु पद्मपुराण में प्रियंवदा सुनाती है।
2. महाभारत में दुष्यन्त शकुन्तला से विदाई लेते समय उसे किसी प्रकार की निशानी नहीं देता परन्तु पद्मपुराण में वह अंगूठी देता है।

पाणिग्रहण से बाद की कथा अभिज्ञानशाकुन्तल के एक दो स्थानों को छोड़कर उसका आमूल चूल अनूदित संस्करण लगती है।

पद्मपुराण की कथा के अनुसार शकुन्तला सात महीने गर्भिणी बनकर आश्रम में रहती है परन्तु नाटक के अनुसार कण्व को तीर्थ से लौटने के बाद जैसे ही शकुन्तला और दुष्यन्त के गन्धर्व विवाह का पता चलता है वैसे ही वह शकुन्तला को पति के घर भेज देते हैं।

पद्मपुराण की कथा के अनुसार राजधानी जाते समय शकुन्तला, गौतमी, शारद्वत एवं शार्ङ्गरव के साथ प्रियंवदा भी होती है। प्रियंवदा के हाथ से ही रास्ते में सरस्वती के जल में शकुन्तला की अंगूठी गिर जाती है, पर वह यह बात बताती नहीं हैं। राजदरबार में शकुन्तला जब प्रियंवदा से अंगूठी मांगती है तो वह धीरे से शकुन्तला के कान में सच्ची बात कह देती है। इसे सुनते ही शकुन्तला बेहोश हो जाती है।

शेष सभी घटनाएँ अभिज्ञानशाकुन्तल की तरह ही पद्मपुराण में हैं। पद्मपुराण बाद की रचना होने के कारण इसकी कथा को 'शाकुन्तल' नाटक की आधार कथा नहीं माना गया।

मूलकथा में परिवर्तन एवं परिवर्धन

महाभारत की निर्जीव एवं चमत्कारहीन कथा में कालिदास ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर इसे सरस एवं रोचक बनाया है। कालिदास ने नाटकीय तत्त्वों के आधार पर जहाँ जैसा उचित समझा है और उन्हें नाटक के लिए उपयोगी एवं सौंदर्यवर्धक लगा वहाँ उन्होंने वैसा परिवर्तन और परिवर्धन कर दिया है।

वस्तुतः महाभारत के कथानक की घटना अति प्राचीन काल में हुई थी। समाज की उस अवस्था में शकुन्तलोपाख्यान में वर्णित कुछ प्रसंग एवं विचार भले ही उस समय असम्भाव्य एवं अनुचित न रहे हों पर कालिदासकालीन सुसंस्कृत समाज में सर्वतः विकसित समाज में वही विचार सबके लिए मान्य नहीं रह गए थे अतएव सामाजिक विचारों एवं परिस्थितियों के अनुसार कालिदास ने इसमें परिवर्तन किया है जोकि इस प्रकार है-

1. **मूलकथा** के अनुसार राजा दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते सेना के साथ सहसा कण्व के आश्रम के पास पहुंच जाता है और सेना को रोककर स्वयं अकेला आश्रम में चला जाता है।

   नाटक में सेना पीछे छूट जाती है और राजा सारथि के साथ आश्रम में प्रवेश करता है। सारथि को घोड़ों को आराम देने के लिए छोड़कर दुष्यन्त जैसे ही आगे बढ़ता है वैसे ही तापस कन्याओं से सहायता की बात सुनकर उनके पास चला जाता है। यह सब कुछ बड़ा रोचक और स्वभाविक लगता है।

2. पीछे छूटी हुई सेना का भी कवि ने समुचित उपयोग किया है। राजा को ढूंढती-ढूंढती सेना आश्रम के समीप पहुंचकर उपद्रव मचाने लगती है। उस समय राजा शकुन्लता आदि के साथ मधुर वार्ता कर रहा होता है। सेना के उत्पात एवं कोलाहल को सुनकर उसे शान्त करने के लिए दुष्यन्त को वहां से बड़ी स्वभाविकता से नाटककार ने प्रस्थान कराया है।

3. **गन्धर्व विवाह** का प्रसंग भी अभिज्ञानशाकुन्तल में बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। महाभारत में शकुन्तला अपने जन्म की कहानी स्वयं कहती है जो कि सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध एवं कन्या की शालीनता का प्रतीक नहीं है। यही नहीं महाभारत की शकुन्तला में प्रगल्भता स्पष्टवादिता एवं स्वार्थ इतना अधिक है कि वह प्रेम को व्यापार समझती है। गन्धर्व विवाह को स्वीकार करने से पहले वह यह शर्त रखती है कि उसका पुत्र राज्य

का उत्तराधिकारी बनना चाहिए। वह कहती है–

मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरम्।
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।।

दुष्यन्त भी शकुन्तला को प्रलोभन देकर अपने वश में करना चाहता है।

नाटक में कालिदास ने शकुन्तला एवं दुष्यन्त दोनों के चरित्रों को कलुषित होने से बचा लिया है। नाटक में शकुन्तला की दोनों सखियां ही शकुन्तला के जन्म का वृत्तान्त सुनाती हैं। इससे शकुन्तला की शालीनता एवं भोलापन प्रदर्शित हुआ है। न ही नाटक में शकुन्तला किसी प्रकार की शर्त रखती है। वह सखियों से केवल यही प्रार्थना करती है कि वे ऐसा आचरण करें जिससे वह दुष्यन्त की कृपा का पात्र बन जाए।

4. **महाभारत** में महर्षि कण्व वन में फल लेने के लिए गए होते हैं। वहां से लौटने में उन्हें अधिक समय नहीं लग सकता। इतने थोड़े समय में नायक नायिका का प्रेमाबद्ध होकर गन्धर्व विवाह के सूत्र में बंध जाना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

   परन्तु **नाटक में** यह समय काफी लम्बा है। महर्षि कण्व शकुन्तला के बुरे ग्रहों के शमन के लिए सोमतीर्थ पर गए होते हैं। स्वभावतः वहां काफी समय लगा होगा। कण्व की इस दीर्घ अनुपस्थिति में प्रथमांक की अनेक घटनाएँ बड़ी स्वाभाविकता से घटी हैं। तपस्वी दुष्यन्त से आश्रम की रक्षा के लिए कुछ दिन ठहरने की प्रार्थना करते हैं। दुष्यन्त एवं शकुन्तला को परस्पर बातचीत का काफी समय मिल जाता है जिससे उनका प्रेम सरलता से चरम सीमा को पहुंच जाता है।

5. **महाभारत की मूल कथा** में अंगूठी की घटना का अभाव है। **नाटक** में राजा शकुन्तला से विदाई लेते समय उसे अपनी अंगूठी दे जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि कालिदास ने मुद्रिका प्रसंग बौद्धजातकों से ग्रहण किया है। 'कट्टहरि' नामक बौद्ध जातक में मुद्रिका प्रसंग आता भी है। परन्तु अधिकतर विद्वानों का कहना है कि बौद्धों ने इस प्रसंग को हिन्दू ग्रन्थों से ही ग्रहण किया है। वैसे भी मुद्रिका का प्रसंग वाल्मीकि रामायण में भी आता है। लोक कथाओं में भी मुद्रिका देने के अनेक प्रसंग आते हैं अधिक संभावना यही है कि कालिदास ने वाल्मीकि–रामायण एवं लोक कथाओं से प्रेरणा ग्रहण की होगी। पर कुछ भी हो, अंगूठी की घटना नाटक की कथा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दुर्वासा के शाप की निवृत्ति का एक मात्र साधन अंगूठी ही है।

6. **महाभारत की कथा** के अनुसार गन्धर्व विवाह के तीन वर्ष बाद शकुन्तला के यहां पुत्र होता है और पुत्र के छः वर्ष का होने तक शकुन्तला कण्व के पास ही रहती है। इस प्रकार शकुन्तला नौ वर्ष तक पति से अलग रहती है, जो सर्वथा अस्वाभाविक लगता है।

   नाटक में कण्व तीर्थ से लौटते ही शकुन्तला को गर्भिणी रूप में ही पति के पास भेज देते हैं। इससे भारतीय मर्यादा की रक्षा हुई है।

7. **मूलकथा** के अनुसार शकुन्तला जब पुत्र के साथ हस्तिनापुर जाती है तो दुष्यन्त जान बूझकर शकुन्तला को पहचानता नहीं है। लोक भय के कारण वह झूठ बोल देता है। इससे उसके चरित्र का पतन हुआ है।

   नाटक में कालिदास ने शाप एवं मुद्रिका की योजना से न केवल दुष्यन्त के चरित्र की रक्षा की है, अपितु दोनों (नायक नायिका) को शील स्खलन का दण्ड प्रदान कर न्याय का आदर्श भी प्रस्तुत किया है। शाप के कारण ही वह शकुन्तला को भुला देता है, उसका उसमें अपना कोई दोष नहीं हैं।

8. छठे एवं सातवें अंक की सब घटनाएँ- धीवर का सम्पूर्ण वृत्तान्त, धनमित्र वणिक् की नाव दुर्घटना से मृत्यु का वृत्तान्त और मातलि का प्रसंग ये सब कालिदास की लेखनी की मौलिक उद्भावनाएँ हैं।

9. भास के नाटकों से भी कुछ प्रसंगों में कालिदास द्वारा सहायता ग्रहण की गई है ऐसा प्रतीत होता है। वृक्ष से संचन का प्रसंग प्रतिमा नाटक में आता है तो तपोवन का प्रसंग स्वप्नवासवदत्तम् में आता है। इन दोनों प्रसंगों का अभिज्ञानशाकुन्तल पर प्रभाव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त 'अविमारकम्' की शृंगारिकता का भी संभवतः अभिज्ञानशाकुन्तल पर प्रभाव है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि अभिज्ञानशाकुन्तल का मूल आधार महाभारत का शकुन्तलोपाख्यान ही है और कालिदास वाल्मीकि रामायण, लोककथाओं एवं भास से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं तथापि नाटककार ने अपनी प्रवीण प्रतिभा से परिवर्तनों-परिवर्धनों द्वारा, कल्पनाओं व उद्‌भावनाओं द्वारा उसके घटनाचक्र का ऐसा ग्रंथन किया है कि अभिज्ञानशाकुन्तल वास्तव मे ही कालिदास का 'सर्वस्व' बन गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल का नामकरण

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' शब्द की विद्वानों के द्वारा अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है। जैसे–

1. 'अभिज्ञानप्रधानम् शाकुन्तलम्'- इसका अर्थ है शकुन्तला से संबंधित ऐसा नाटक (शकुन्तलाम् अधिकृत्य नाटकम् शाकुन्तलम्-शकुन्तला+अण् प्रत्यय) जिसमें अभिज्ञान (पहचान की निशानी) प्रमुख है अर्थात् जिसमें पहचान की कोई निशानी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
2. 'अभिज्ञानम् च तत् शाकुन्तलम्' यहां अभिज्ञान से अंगूठी (अभिज्ञायतेऽनेनेति) और शाकुन्तल से शकुन्तला संबंधी अर्थ ग्रहण किया गया है। ऐसी स्थिति में अभिज्ञानशाकुन्तल का अर्थ होगा- शकुन्तला की पहचान।
3. 'अभिज्ञान-सहितं शाकुन्तलम्' इसका अर्थ है अभिज्ञान (मुद्रिका) के वर्णन के साथ शकुन्तलाविषयक नाटक।
4. 'अभिज्ञानेन स्मृतं शाकुन्तलम्' का अर्थ है ऐसा नाटक जिसमें अभिज्ञान (अंगूठी) द्वारा याद आई हुई शकुन्तला के विवाह का वर्णन है।

इस प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामकरण विषयक विद्वानों के मत प्राप्त होते हैं परन्तु इन सभी व्याख्याओं में 'अभिज्ञान' शब्द का संबंध पहचान की निशानी से है। चौथे अंक में शकुन्तला की सखी स्वयं कहती है कि हम दुष्यन्त की दी हुई निशानी मुद्रिका उस के पास भेज देती हैं- 'इदमंगुलीयं तस्याभिज्ञानं विसर्जयाम:'। इसी अंक में पहचान अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। जहाँ पर शकुन्तला की सखी कहती है- 'सखी यदि वह राजा कहीं पहचानने में मंथर (प्रत्यभिज्ञान मंथर) हो जाए तो तुम उसे उन्हीं की नामांकित यह मुद्रिका दिखा देना। पांचवें अंक में भी शकुन्तला कहती है- 'परस्त्री की शंका करने वाले तुमने यदि इस तरह से अपने वचन से पलटना है तो मैं एक बड़ी भारी निशानी (तदभिज्ञानेन गुरुणा) से तेरी शंका को दूर करती हूँ।

कुछ विद्वानों ने पहचान की यह निशानी 'अपराजिता औषधि' मानी है क्योंकि इस अपराजिता औषधि के माध्यम से दुष्यन्त अपने पुत्र की पहचान कर पाता है और पुत्र के माध्यम से शकुन्तला को प्राप्त करता है। परन्तु यह धारणा ठीक प्रतीत नहीं होती क्योंकि एक तो इससे सर्वदमन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व मिलता है। सर्वदमन को इतना महत्त्व देना नाटककार को अभिप्रेत नही हैं। दूसरे 'अपराजिता औषधि' की भूमिका बहुत कम है। सातवें अंक को छोड़कर और किसी अंक पर इसका प्रभाव लक्षित नहीं होता।

पहचान की यह निशानी अंगूठी ही है। प्रथमांक में दुष्यन्त की यह अंगूठी शकुन्तला के पास बड़े कलात्मक ढंग से पहुँचाई गई है। वह पहले सखियों के हाथ पहुँचती है। मुद्रिका पर दुष्यन्त नाम के अक्षर पढ़कर हर्ष मिश्रित आश्चर्य प्रकट करती हैं। वे समझती हैं कि यह अंगूठी सामने खड़े राजा की ही है पर राजा बड़ी कुशलता व चतुराई से 'राज्ञः परिग्रहोऽयम्' कहकर उन्हें भ्रम में डालना चाहता है। राजा के उपहार को कौन नहीं चाहेगा? इसलिए एक सखी उस अंगूठी को स्वीकार करने की बात कह देती है। इस अंगूठी को देखते ही दर्शक यह अनुमान लगा लेता है कि अवश्य ही यह अंगूठी इस नाटक के घटनाक्रम में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

यद्यपि गुरुजनों की अनुमति के बिना गन्धर्व विवाह के अपराध के दण्ड विधान के लिए नाटककार कालिदास ने शकुन्तला के लिए दुर्वासा शाप की कल्पना की परन्तु इस शाप की शान्ति का उपाय रूप सामग्री भी प्रस्तुत कर दी और वह यही दुष्यन्त के द्वारा ही हुई निजनामांकित मुद्रिका। भोली-भाली सखियों को विश्वास हो जाता है कि दुष्यन्त के न पहचानने की अवस्था में शकुन्तला के पास उसका समाधान होगा। पाठक या दर्शक इस बात की सच्चाई जानने के लिए अधीर हो जाता है और जब चतुर्थ अंक के अंत में अंगूठी के मिलने पर शकुन्तला का दिल कांप उठता है तो सुधी पाठक की यह व्यग्रता और भी बढ़ जाती है। पंचम अंक में अंगूठी के न मिलने

से शकुन्तला का भरे दरबार में जो अपमान होता है, उसे नाटककार आवश्यक समझता है। वह शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों को उनके अपराध के लिए दण्डित करना चाहता हैं। इसलिए अंगूठी के गिर जाने की कल्पना की गई है। शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों नाटककार की दृष्टि में समान रूप में अपराधी है। इसलिए दोनों को दण्ड भी समान रूप से मिलना चाहिए। दुष्यन्त के दरबार में शकुन्तला को भरपूर दण्ड मिल जाता है। दुष्यन्त को भी काफी कठोर बातें सुननी पड़ती हैं। परन्तु नाटककार को इतना भर स्वीकार्य नहीं है। इसलिए वह षष्ठ अंक के आरम्भ में मुद्रिका की प्राप्ति की योजना करता है। मुद्रिका के मिलते ही दुष्यन्त पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है। छठे अंक का लगभग तीन चौथाई भाग दुष्यन्त के दण्ड विधान के लिए ही नियोजित हुआ है। सांतवे अंक में मिलन के मधुर अवसर पर हम दुष्यन्त को शकुन्तला की अंगूठी देने का प्रयत्न करते देखते हैं, यह बात दूसरी है कि शकुन्तला इसे लेने से मना कर देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुद्रिका नाटक के लगभग सम्पूर्ण घटनाक्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसलिए अभिज्ञानशाकुन्तल नाम सर्वदा उपयुक्त है।

अभिज्ञानशाकुन्तल का स्वरूप व वस्तु-योजना

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में सात अंक हैं। इन सात अंकों में कवि कालिदास ने राजा दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रणय (प्रेम) वियोग तथा पुनर्मिलन की कहानी का मनोरम वर्णन किया है। अंकानुसार कथावस्तु इस प्रकार है-

प्रथम अंक में राजा दुष्यन्त मृगया खेलते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में चला जाता है जहाँ उसका वृक्षों का सिंचन करती हुई तीन मुनि कन्याओं से साक्षात्कार होता है। उनमें से शकुन्तला के प्रति वह अनुरक्त हो जाता है। उस समय कण्व ऋषि शकुन्तला के किसी अमंगल के शान्त्यर्थ सोमतीर्थ गए हुए थे। उसका जीवन वृत्तांत जानने के बाद वह शकुन्तला पर आकृष्ट होता है और शकुन्तला भी उस पर अनुरक्त होती है। वार्तालाप के क्रम में राजा को ज्ञात हो जाता है कि शकुन्तला कण्व की पुत्री न होकर मेनका नामक अप्सरा की कन्या है जिसके पिता विश्वामित्र है। दोनों ही अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए गन्धर्व विधि से प्रणयसूत्र में बंध जाते हैं।

द्वितीय अंक में दुष्यन्त अपने मित्र माधव्य (विदूषक) से शकुन्तला के प्रेम की चर्चा करता है। तभी आश्रम के दो तपस्वी आकर राजा से आश्रम की रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। उसी समय हस्तिनापुर से दूत सन्देश लेकर आता है कि देवी वसुमती के उपवास के पारण के दिन राजा अवश्य आएं। शकुन्तला के प्रति मुग्ध राजा तपोवन छोड़ना नहीं चाहता। अन्त में वह विदूषक को भेज देता है और उसके चंचल स्वभाव को जानते हुए शकुन्तला की प्रेम कथा की बात को मज़ाक ही समझने के लिए कहता है। ऐसा कहकर कवि पंचम अंक की शकुन्तला परित्याग की घटना की पृष्ठभूमि तैयार कर लेता है। यदि विदूषक का संदेह दूर नहीं किया जाता तो संभव था कि दर्शक के हृदय में यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि जब विदूषक इस बात को जानता था तो उसने शकुन्तला को पत्नी रूप में ग्रहण करने से राजा को क्यों नहीं मना किया? अत: कवि इस सन्देह का निवारण द्वितीय अंक में ही कर देता है।

तृतीय अंक में विरह पीड़िता शकुन्तला के पूर्वराग का पता राजा को लग जाता है। लतागृह में पड़ी हुई शकुन्तला विरह की अग्नि से तप्त होकर राजा के पास पत्र लिखने की योजना बनाती है और कमल के पत्ते पर पत्र लिख देती है। उसी समय राजा सामने आ जाता है और दोनों ही अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए गन्धर्व विवाह करके आनन्द लेते हैं तभी गौतमी रात्रि के आगमन की सूचना देती है और शकुन्तला चली जाती है। गौतमी शकुन्तला का समाचार जानने के लिए आती है और दुष्यन्त छिप जाता है।

चतुर्थ अंक में विष्कम्भक (मध्यम व निम्न वर्ग के पात्रों के बीच का वार्तालाप) द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि दुष्यन्त अपनी राजधानी चला गया। उसने शकुन्तला को अपनी नामांकित अंगूठी दे दी थी कि मेरे नाम के जितने अक्षर है उतने ही दिनों में मैं तुम्हें राजधानी में बुला लूँगा। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न है तभी दुर्वासा का आगमन होता है और वह उनका स्वागत नहीं कर पाती। दुर्वासा आतिथ्य सत्कार न होने के कारण उसे शाप दे देते हैं कि तू जिसके ध्यान में मग्न है वह तुझे स्मरण नहीं करेगा। प्रियंवदा (शकुन्तला की सखी) दुर्वासा का

अनुनय विनय करके उन्हें प्रसन्न करती है और वे कहते हैं कि जब तेरी सखी कोई उसे अभिज्ञान दिखा देगी तो राजा पहचान जाएगा। इसी बीच कण्व तीर्थयात्रा से लौटकर आश्रम में आते हैं और उन्हें शकुन्तला के विवाह की जानकारी होती हैं। वे शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने की तैयारी करते हैं। शकुन्तला जब विदा होती है तो आश्रम में करुण दृश्य उपस्थित हो जाता है और वनवासी कण्व द्रवीभूत हो जाते हैं।

पंचम अंक में शकुन्तला को साथ लेकर गौतमी शार्ङ्गरव एवं शारद्वत दुष्यन्त की राजधानी में पहुँचते हैं। राजा शापवश शकुन्तला को पहचान नहीं पाता। जब शकुन्तला उसकी दी हुई अंगूठी दिखाना चाहती है तो वह मिल नहीं पाती क्योंकि जाते समय प्रियंवदा ने कहा था कि यदि तुम्हारा पति तुम्हें न पहचाने तब तुब उसे अपनी अंगूठी दिखा देना और वह तुम्हें पहचान जाएगा। अंगूठी न मिलने पर गौतमी कहती है कि वह शक्रावतार तीर्थ में अवश्य ही गिर गई होगी। राजा शकुन्तला का तिरस्कार करता है। और शकुन्तला भी उसे कटुवचन कहती है। राजा द्वारा तिरस्कृत तथा गर्भवती शकुन्तला को जब शार्ङ्गरव आदि आश्रम में नहीं ले जाते तब राजा का पुरोहित उसे प्रसवपर्यन्त अपने यहां पुत्री के समान रखने को तैयार हो जाता है। पर वह पुरोहित के घर पहुंचती नहीं कि आकाश से कोई अदृश्य ज्योति उसे उठाकर लुप्त हो जाती है।

षष्ठ अंक के प्रवेशक में राजा की अंगूठी बेचते हुए एक पुरुष पकड़ा जाता है और वह रक्षकों के द्वारा राजा के समक्ष लाया जाता है। अंगूठी देखते ही शाप का प्रभाव दूर हो जाता है और राजा पूर्व घटनाओं का स्मरण कर अपने निष्ठुर व्यवहार से दु:खित हो जाता है। वह शकुन्तला के विरह में व्यथित होकर अपने को कोसता है। इसी बीच इन्द्र का सारथी मातलि अदृश्य होकर इस विचार से विदूषक का गला दबाता है कि विरह के कारण शान्त हुए राजा का वीरत्व प्रकट हो जाए और वह इन्द्र पर आक्रमण करने वाले कालनेमि आदि राक्षसों का विनाश कर सके। ऐसा ही होता है और राजा राक्षसों का विनाश करने के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक में राक्षसों का संहार कर राजा किंपुरूष पर्वत पर स्थित महर्षि मारीच के आश्रम पर जाता है। वहां उसे सिंह के साथ खेलता हुआ एक शिशु दिखाई पड़ता है। खेलते समय बालक के हाथ मे बंधी हुई अपराजित नामक औषधि खुलकर गिर जाती है और उसे राजा उठा लेता है। बालक के साथ रहने वाली तपस्विनी यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है कि इसके माता पिता के अतिरिक्त यदि कोई अन्य व्यक्ति इसे उठाएगा तो वह औषधि उसे सांप बनकर काट लेगी। जब वह तपस्विनी उस बालक को मिट्टी का पक्षी देकर उसे आकृष्ट करना चाहती है तब वह अपनी मां की खोज करता है। तभी शकुन्तला आती है और राजा के साथ उसका मिलन होता है। मारीच दोनों को आशीर्वाद देते हैं और इन्द्र के रथ पर उन्हें राजधानी भेज देते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति हो जाती है।

इस प्रकार नाटक की वस्तु योजना अत्यन्त सुव्यवस्थित रूचिकर एवं अन्त: सूत्र में सुग्रथित है। इस नाटक के प्रथम चार अंकों को 'भोगभूमि' बीच के दो अंकों को 'दण्डभूमि' और अन्तिम अंक को 'सिंहभूमि' नाम दिया गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल का चतुर्थ अंक

'तत्रापि चतुर्थोऽङ्क:'— यह उक्ति नाटक के चतुर्थ अंक के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। वस्तुत: यही अंक नाटक का प्राण है।

अंक के आरम्भ में ही कथा में एक विलक्षण मोड़ आता है। प्रेम की शुद्धि, शीलता का उल्लंघन एवं गुरूजनों की उपेक्षा का दण्डविधान 'दुर्वासा शाप के माध्यम से किया गया है। दुर्वासा शाप जैसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना को दर्शाकर नाटककार ने विलक्षण नाटकीय सूझ-बूझ का परिचय दिया है। तेजी से दौड़ते समय एक सखी के हाथ से पुष्पभाजन का गिरना इस बात की सूचना देता है कि शकुन्तला का प्रेममार्ग बाधारहित नहीं है। एक सखी की अनुनय विनय से दुर्वासा इतना भर कहते हैं कि उसके शाप का अवसान किसी पहचान की वस्तु से हो जाएगा। शकुन्तला को दी गई मुद्रिका का पुन: यहां स्वभावत: उल्लेख आ जाता है और यह संकेत मिलता है कि नाटक में प्रेम के विषय में अंगूठी का विशेष महत्त्व होगा। दुर्वासा शाप की बात दोनों सखियाँ शकुन्तला को नहीं बताती।

इसके पश्चात् शिष्य के द्वारा प्रातःकाल का अत्यन्त स्वभाविक चित्र उपस्थित किया गया है। अल्प किरणों के साथ आकाश से उतरते हुए चन्द्रमा से यह ध्वनि निकलती है कि जीवन के उत्थान एवं पतन ये दो ही पहलू हैं।

इस अंक में गर्भिणी शकुन्तला की कण्व आश्रम से विदाई का मर्मस्पर्शी चित्रांकन हुआ है। शकुन्तला पतिगृह को भेजी जा रही है क्योंकि अब वह दूसरे की हो गई है। उस पर चारों ओर से मंगल सूचक आशीर्वादों की वर्षा हो रही है, कोई पटरानी बनने, कोई वीरप्रसविनी तो कोई तापसी भर्ता की प्रियतमा बनने का आशीर्वाद देती है। तापसियों के इन आशीर्वादों में सचमुच ही कितनी सच्चाई, तन्मयता व आनन्द, विह्वलता भरी हुई है-

'जाते! भर्तृर्बहुमान सूचकं महादेवी शब्दंलभस्व।'

'वत्से, वीर प्रसविनी भव।'

'वत्से भर्तुर्बहुमता भव।'

'सखि, सुखमज्जनं ते भवतु।'

प्रियंवदा एवं अनुसूया द्वारा शकुन्तला का मांगलिक शृंगार किया जाता है। सखियाँ ही नहीं, वृक्ष और वन देवियां तक उसे मंगल आभूषण उपहार में देती हैं, सचमुच यहाँ पर प्रकृति पेलवा शकुन्तला के साथ प्रकृति घुल मिल गई है।

मंगल शृंगार हो जाने पर तात कण्व ने आकर जो स्नेह युक्त उद्‌गार प्रकट किए है वे किसी भी पिता के मुख से ऐसे अवसर पर निकल सकते हैं-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।

शकुन्तला की विदाई पर सारी प्रकृति आतुर हो उठती है। मृगियों के मुँह से अधचबे घास के कौर गिरने लगते हैं, मोर नाचना छोड़ देते हैं और लताएँ तक पीले पत्तों के रूप में अश्रु बहाती हैं। शकुन्तला का भी प्रकृति के कण-कण से सहोदर स्नेह है। लताभगिनी माधवी को भुजाओं में भरकर शकुन्तला उससे विदाई लेती है। गर्भमन्थरा मृगवधू के प्रसव के बारे में वह चिन्ता प्रकट करती है। पुत्र की तरह पाला हुआ दीर्घापाङ्ग नामक मृगशावक उसके मार्ग को रोक लेता है मानो वह यह सूचित कर रहा हो कि शकुन्तला का कुछ अहित होने वाला है।

इस अंक में कण्व द्वारा दुष्यन्त को दिया गया उपदेश और शकुन्तला को दी गई शिक्षा किसी भी दामाद और पुत्री के लिए स्मरण एवं आचरण के योग्य है। जहां शकुन्तला दोनों सखियों को एक साथ आलिंगन करने के लिए कहती है और पिता के स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता प्रकट करती है, वह दृश्य भी कभी नहीं भुलाया जा सकने वाला है। प्रस्थान करते समय शकुन्तला को दी जा रही अंगूठी को उपस्थापित करके नाटककार ने पुनः इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का संकेत दिया है। इस प्रकार शकुन्तला की विदाई का मुख्य दृश्य काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से, पुत्री की विदाई पर पिता के हृदय के भावों को उजागर करने में एवं उदात्त सामाजिक एवं नैतिक आदर्शों की उपस्थापना में बेजोड़ है।

कण्व की स्नेह भरी आकुलता, अनुसूया एवं प्रियंवदा का सखी स्नेह और चिन्ता, तपोवन के तरुओं, लतिकाओं, मृगियों द्वारा दी गई भाव भीनी विदाई की भावुकता, दुष्यन्त को दिया गया कण्व का उपदेश एवं भावी गृहिणी को दी गई कण्व की शिक्षा शकुन्तला के प्रस्थान पर दोनों सखियों का विषाद एवं तपोवन में उदासी- ये सभी भावनाएँ एवं स्थितियाँ इतनी आत्मीयता, तल्लीनता गंभीरता और यथार्थता के साथ चित्रित की गई हैं कि इस अंक के शब्द-शब्द में मानव हृदय बोलता है। इसलिए यह अंक काव्य सौन्दर्य एवं भाव सौन्दर्य दोनों दृष्टियों से अनुपम है।

यद्यपि चतुर्थ अंक के सभी दृश्य अत्यन्त मार्मिक हैं तथापि आलोचकों ने उनमें भी स्थल, भावादि की दृष्टि से जो सर्वाधिक प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक प्रसंग माने हैं वे इस अंक के चार श्लोकों में वर्णित हैं और उन्हीं को सर्वोत्तम मानते हुए कहा है-

"तत्र श्लोकचतुष्ट्यम्"।

प्रथम सर्वश्रेष्ठ श्लोक है-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजड़ं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।। (4.6)

इसमें वात्सल्य करुण विप्रलम्भ का सर्वोत्तम प्रवाह है। यद्यपि कण्व एक संयमी ऋषि मुनि हैं तथापि पुत्री की विदाई के विचार मात्र से ही उनका हृदय भी द्रवित हो जाता है। अभी शकुन्तला गई नहीं है परन्तु यह सोचकर ही कि 'शकुन्तला आज चली जाएगी' उनका कण्ठ रुंध गया है, हृदय व्याकुलता से युक्त हो गया है तथा दृष्टि भी जड़ हो गई है। यहाँ कवि ने बहुत ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इसी कारण सभी आलोचकों ने एकमत से इसे प्रथम सर्वश्रेष्ठ श्लोक माना है।

दूसरा सर्वश्रेष्ठ श्लोक है-

शुश्रूषस्व गुरुन्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।। (4.18)

इस श्लोक से यह पता लगता है कि यद्यपि कण्व एक ऋषि हैं तथापि लौकिक व्यवहार में निष्णात हैं। एक विदा होती हुई पुत्री के लिए इससे अधिक उपयुक्त और क्या हो सकता है? यह उपदेश केवल भारतीय आदर्श एवं संस्कृति से ही ओत-प्रोत नहीं है अपित, सार्वकालिक, सार्वजनीन और सार्वदेशिक भी है।

तीसरे सर्वश्रेष्ठ श्लोक के विषय में आलोचकों में मतभेद है। कुछ विद्वान इस श्लोक को तृतीय सर्वश्रेष्ठ श्लोक मानते है-

अभिजनवतो भर्तुः श्लाध्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। (4.19)

इसमें विदा होती हुई पुत्री को पिता द्वारा सान्त्वना प्रदान किए जाने का सुन्दर एवं अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया गया है। इसमें कवि ने एक सांसारिक तथ्य व सत्य का प्रकाशन किया है। यद्यपि कन्याएँ विदाई के समय अपने संबंधियों से बिछुड़ने पर अत्यधिक दुःखी होती हैं तथापि पतिगृह जाकर अपनी गृहस्थी में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि धीरे-धीरे उस विरह जन्य दुःख को भूल जाती है। सन्तान होने के पश्चात् तो उनकी व्यस्तता तथा उत्तरदायित्व इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि अपने बच्चों और परिवार के अतिरिक्त उन्हें कुछ और नहीं सूझता।

परन्तु कुछ आलोचकों ने इसके स्थान पर निम्नलिखित श्लोक को तृतीय सर्वश्रेष्ठ श्लोक माना है-

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः।। (4.17)

इस श्लोक में कन्यापक्ष की ओर से कन्या के पिता द्वारा राजा दुष्यन्त के लिए संदेश प्रेषित किया गया है। इसमें कन्या के पिता की हार्दिक भावनाओं की नितान्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इस छोटे से संदेश में गूढ़, गहन, गंभीर अर्थ निहित है। अल्प शब्दों में विपुल अर्थ का सन्निवेश कर कवि ने 'गागर में सागर भरने' की उक्ति को चरितार्थ किया है। इस अंक का चतुर्थ सर्वोत्तम श्लोक इस प्रकार है–

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी, दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्धं, शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।। (4.20)

इस श्लोक में पिता कण्व द्वारा विदाई के समय अपनी पुत्री को सान्त्वना तथा आश्वासन प्रदान करने के साथ-साथ भारतीय परम्परा की भी एक झलक प्रस्तुत की गई है। प्राचीन काल में वृद्धावस्था प्राप्त होने पर राजा अपने राज्य का समस्त भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर, उसे राज्यसिंहासन पर बैठाकर स्वयं पत्नी सहित आश्रमों में चले जाते थे तथा वानप्रस्थी होकर तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे।

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन से यह सिद्ध होता है कि काव्यों में नाटक सर्वश्रेष्ठ है। नाटकों में भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् सर्वश्रेष्ठ है उसमें भी चतुर्थ अंक श्रेष्ठ है और उसमें भी उपर्युक्त चार श्लोक सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः यह कथन युक्तिसंगत ही है–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोकचतुष्ट्यम्।।

पाठ-3

अभिज्ञानशाकुन्तलम्–चतुर्थ अङ्क
(मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्याः श्लोक 1-4)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाट्यन्त्यौ सख्यौ)

(तत्पश्चात् फूल चुनने का अभिनय करती हुई (शकुन्तला की) दोनों सखियां (प्रियंवदा व अनसूया) प्रवेश करती हैं।)

अनसूया– हला प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्त कल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृत्तं मे हृदयं तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्।

(हला पिअंवदे, जइ विमन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं।)

अनसूया– सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्वविवाह के द्वारा शकुन्तला (अपने) अनुरूप पति को प्राप्त हो गई है इससे मेरा हृदय संतुष्ट है तथापि यह सोचने योग्य है।

प्रियंवदा– कथमिव। (कहं वि अ)

प्रियंवदा – क्या?

अनसूया– अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रवश्यिान्तः पुरसमागत इतोगतं वृत्तान्त स्मरति वा न वेति। (अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिआ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउर समागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि वा ण वेति।)

अनसूया– आज वह राजर्षि (दुष्यन्त) यज्ञ को समाप्त करके ऋषियों द्वारा विदा किया गया अपने नगर में प्रवेश करके अन्तःपुर (की स्त्रियों) से मिल कर यहां की (आश्रम की) बातों को याद रखेगा अथवा नहीं।

प्रियंवदा– विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति। (बीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुण विरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअ ण आणे पडिवज्जिस्सदि त्ति।)

प्रियंवदा– विश्वस्त रहो। उस प्रकार की विशेष आकृतियाँ गुणों की विरोधी नहीं होतीं। पिता (कण्व) अब इस समाचार को सुनकर क्या सोचेंगे यह (मैं) नहीं जानती।

अनसूया– यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतं भवेत्। (जह अहं देक्खामि तह तस्य अणुमदं भवे।)

अनसूया– जैसा मैं देख रही हूं (मुझे प्रतीत होता है) कि उन्हें (कण्व को) स्वीकार होगा।

प्रियंवदा– कथमिव। (कहं वि अ।)

प्रियंवदा– कैसे?

अनसूया– गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः। (गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्प आसेण किदत्थो गुरुअणो।)

अनसूया– गुणी (व्यक्ति को) कन्या दी जानी चाहिए यही (माता पिता का) प्रथम संकल्प होता है। भाग्य ही यदि उसे पूरा कर देता है तो निश्चित रूप से बिना प्रयास के गुरुजन कृतकृत्य हो जाते हैं।

प्रियंवदा– (पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि। (सहि अवइदाइं बालिकम्म पज्जत्ताइं कुसुमाइं।)

प्रियंवदा– (फूलों के पात्र को देखकर) सखि, पूजा के लिए पर्याप्त पुष्प चुन लिए गए हैं।

अनसूया– ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवतार्चनीया।

(णं सहीए सउन्दलाए सोहाग्गदेवआ अच्चणीआ।)

अनसूया-निश्चय ही सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता की (भी) अर्चना की जानी है।

प्रियंवदा- युज्यते। (जुज्जदि)

प्रियंवदा- ठीक है।

(इति तदेव कर्मारभेते)

इस प्रकार वही कार्य अर्थात् फूल चुनना (दोनों प्रारम्भ कर देती हैं।)

व्याख्या- प्रियंवदा और अनसूया के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि दुष्यन्त और शकुन्तला का गन्धर्व विवाह हो चुका है। अनसूया को केवल एक चिन्ता है कि अभी तो राजा दुष्यन्त जब तक आश्रम में हैं तब तक तो शकुन्तला के प्रति अत्यधिक प्रेमभाव से युक्त है। परन्तु आज यज्ञ की समाप्ति पर जब वह अपनी राजधानी पुनः वापस लौट जाएगा और वहां अन्तःपुर की सुन्दर रानियों से मिलकर क्या वह शकुन्तला को याद रखेगा अथवा नहीं। अनसूया गम्भीर प्रकृति की बुद्धिमती, दूरदर्शी व लौकिक व्यवहार को समझने वाले तापस कन्या है अतः उसके मन में ऐसी शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु प्रियंवदा को इस विषय में बिल्कुल भी चिन्ता नहीं है क्योंकि उसे विश्वास है कि मधुर, गम्भीर सुन्दर आकृति वाला राजा सत्यप्रतिज्ञ ही रहेगा और शकुन्तला को कभी धोखा नहीं देगा। बाह्य रूप से रमणीय दिखने वालों के आन्तरिक गुण भी रमणीय होते हैं। प्रियंवदा वर्तमान की चिन्ता करने वाली है अतः उसे इस बात की चिन्ता है कि पिता कण्व जब तीर्थ यात्रा से वापस आएँगें तो इस विवाह के संबंध में पता नहीं उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी। प्रियंवदा की इस आशंका का निराकरण करती हुई अनसूया कहती है कि पिता कण्व इसका अनुमोदन ही करेंगे क्योंकि माता पिता की सबसे बड़ी इच्छा यही होती है कि उनकी पुत्री गुणों से युक्त सुयोग्य वर को प्राप्त करे और यदि भाग्य से ही वह कार्य सुसम्पन्न हो जाता है तो माता पिता की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता क्योंकि उनके द्वारा परिश्रम किए बिना ही अभीष्ट फल की प्राप्ति कर ली जाती है। वस्तुतः शकुन्तला को भी सौभाग्य से ही चक्रवर्ती राजा दुष्यन्त जैसा सुयोग्य वर प्राप्त हो गया अतः कण्व मुनि की मनोकामना अनायास ही पूर्ण हो गई। अनसूया का यह अनुमान सचमुच ठीक निकलता है क्योंकि कण्व ऋषि विवाह की बात सुनकर कहते हैं-

"दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता" तथा

"वत्से! सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता।"

'शकुन्तला के सौभाग्य देवता की पूजा की जानी है' —इस कथन के दो अर्थ विद्वानों के द्वारा किए गए हैं-

डा. कपिलदेव द्विवेदी ने पति को सौभाग्य देवता माना है क्योंकि उसी के कारण कन्या का सौभाग्य स्थिर रहता है। जबकि एम.आर. काले, प्रो. आर.डी. करमरकर, प्रो. सी.आर. देवधर आदि ने 'सौभाग्य की अधिष्ठात्रीदेवी' यह अर्थ किया है। प्रो. एम.आर. काले ने इन्हें गौरीदेवी माना है। अनसूया के इस कथन से यह संकेत प्राप्त होता है कि शकुन्तला के दाम्पत्य जीवन में विपत्ति आने वाली है और उसकी शान्ति के लिए सौभाग्य देवता की पूजा की जा रही है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

अङ्कः- नाट्यशास्त्र के अनुसार जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुरित करता है, जहां पर अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहां पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः बिन्दु का सम्बन्ध बना रहता है उसे 'अङ्क' कहते हैं।

"अङ्क इति रूढ़िशब्दो भावै रसैश्च रोह्यत्यर्थात्।

नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः।।

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।

किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः।। (नाट्यशास्त्र 20/14-16)

संस्कृत नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। एक अङ्क में एक कथा का भाग लगभग पूरा होता है। अङ्क की समाप्ति सभी पात्रों के निष्क्रमण से होती है। दुष्यन्त से शकुन्तला के विवाह के बाद ही घटनाओं से लेकर उसकी विदाई तक का कथांश इस चतुर्थ अङ्क मे वर्णित है।

विषकम्भक- यह नाटक का वह अंश होता है जहां दो पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से भूतकाल अथवा भविष्यत काल की घटनाओं की सूचना दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य नाटक को संक्षिप्त करना है। कथानक में कई अंश ऐसे होते हैं जिन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित करना तो आवश्यक नहीं होता परन्तु कथानक को समझने के लिए इनका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक होता है। यह किसी अंक के प्रारम्भ में ही होता है।

गन्धर्व विवाह धर्मशास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख है- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गान्ध र्व, राक्षस और पैशाच।

गन्धर्व विवाह करने की अनुमति केवल क्षत्रियों को थी। माता पिता की स्वीकृति के बिना ही वर और कन्या की स्वेच्छा से किया गया विवाह गन्धर्व विवाह कहा गया है।

समास

कुसुमावचयम् -कुसुमानाम् अवचयम्, षष्ठी तत्पुरुष समास।

निर्वृत्तकल्याणा -निर्वृत्तं कल्याणं यस्या: सा बहुब्रीहि समास। प्रथमा विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग

राजर्षि -राजा चासौ ऋषिश्च, कर्मधारय समास।

आकृति विशेषा:-आकृतीनां विशेषा:। षष्ठी तत्पुरूष समास।

पदपरिचय

नाट्यन्त्यौ -नट् धातु + णिच् प्रत्यय + शतृ प्रत्यय ङीप् प्रत्यय, प्रथमा, द्वितीया विभक्ति द्विवचन स्त्रीलिंग

प्रतिपत्स्यते-प्रति+पत् धातु लृट्लकार प्रथम पुरूष एकवचन, आत्मनेपद।

गुणवते-गुण शब्द+वतुप्, चतुर्थी विभक्ति एकवचन पुल्लिंग।

प्रतिपादनीया-प्रति उपसर्ग+पद् धातु+णिच् प्रत्यय+ अनीयर् प्रत्यय, एकवचन स्त्रीलिंग।

अवचितानि-अव+चि धातु +क्त प्रत्यय, कर्मवाच्य प्रथमा द्वितीया विभक्ति, बहुवचन नपुसंकलिंग

कारक

अप्रयासेन -'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिक से इसमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

.....

नेपथ्ये (पर्दे के पीछे से)

अयमहं भो:।

अरे! यह मैं (आया हूं)

अनसूया-(कर्णं दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव निवेदितम् (सहि अदिधीणं विअ णिवेदिदं।)

अनसूया- (कान देकर अर्थात् सुनकर) पूजनीय अतिथि से प्रतीत हो रहे हैं।

प्रियंवदा- ननूटजसंनिहिता शकुन्तला। (णं उऽजसण्णिहिदा सउन्दला।)

प्रियंवदा- निस्सन्देह शकुन्तला कुटिया के पास अर्थात् कुटिया में विद्यमान है।

अनसूया-अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता। अलमेतावद्भि: कुसुमै:। (अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। अल एत्तिएहिं कुसुमेहिं।) (इति प्रस्थिते)

अनसूया– परन्तु आज हृदय से अविद्यमान है। इतने ही फूलों से बस करो अर्थात् इतने ही फूल पर्याप्त हैं। (ऐसा कहकर (दोनों) चल पड़ती हैं)।

(नेपथ्ये)

आः अतिथि परिभाविनि–

अरे अतिथि का तिरस्कार करने वाली!

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा

तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्

कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।।1।।

अन्वय– अनन्यमानसा यम् विचिन्त्यन्ती उपस्थितम् माम् तपोधनम् न वेत्सि, सः प्रमत्तः प्रथमं कृतां कथाम् इव बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति।

अनुवाद– एक चित्त से जिसका चिन्तन करती हुई (तुम) उपस्थित हुए मुझ तपस्वी को नहीं जान रही (अर्थात् महत्त्व नहीं दे रही) वह याद दिलाए जाते हुए भी तुम्हें याद नहीं करेगा जिस प्रकार उन्मत्त (पागल) पहले कही गई बातों को (याद नहीं करता)।।1।।

व्याख्या– फूलों को चुनती हुई प्रियंवदा और अनसूया को दूर से आवाज सुनाई पड़ती है जैसे कि कोई अतिथि आया हो। प्रियंवदा सोचती है कि शकुन्तला तो वहाँ है ही अतः अतिथि का यथोचित आदर सत्कार कर देगी परन्तु अनसूया बातों को अधिक गम्भीरता से समझती है, वास्तविकता के धरातल पर रहती है अतः कहती है कि यद्यपि शकुन्तला शरीर से तो कुटिया में विद्यमान है तथापि उसका हृदय दुष्यन्त की ओर ही लगा हुआ है क्योंकि गान्ध र्व विवाहोपरान्त आज वह पहली बार उसे छोड़कर राजधानी वापस जा रहा है। उसके विचारों में डूबी हुई शरीर से उपस्थित होने पर भी शकुन्लता कुटिया में अनुपस्थित के समान ही है। अतः प्रियंवदा से तुरन्त ही कुटिया की तरफ चलने को कहती है परन्तु इससे पहले कि वे दोनों वहाँ पहुंच पाती उन्हें किसी की आवाज सुनाई पड़ती है जिससे शकुन्लता को शाप दे दिया था कि 'जिसके ध्यान में मग्न तू यहां आए मुझ तपस्वी की उपेक्षा कर रही है वह तुझे भूल जाएगा और बार-बार याद दिलाए जाने पर भी उसी प्रकार याद नहीं करेगा जिस प्रकार एक पागल पहले कही गई बातों का स्मरण नहीं कर पाता'।

वस्तुतः आवाज देने पर भी आश्रम से जब कोई उत्तर नहीं मिला तो दुर्वासा ऋषि क्रोधित हो उठे। वे जानते हैं कि शकुन्लता अपने प्रियतम के विचारों में इतनी खोई हुई है कि वह अपने कर्त्तव्य को भी भूल बैठी है। दुर्वासा को यह सहनीय नहीं है कि कर्त्तव्य को प्रणय की बलिवेदिका पर न्योछावर कर दिया जाए इसलिए वह शकुन्लता को शाप दे देते हैं। शकुन्लता को दुष्यन्त को याद करना दुर्वासा के क्रोध का कारण नहीं है अपितु उसकी अशून्यहृदयता और कर्त्तव्य प्रमत्तता ही उनके क्रोध का कारण है। दुर्वासा का तपोधन विशेषण भी साभिप्राय है इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि इतना महान् तपस्वी मैं तुम्हारे आश्रम में आया हूँ जिसका तिरस्कार करने का दुस्साहस आज तक कोई नहीं कर पाया उसी तपोधन के प्रति तुम्हारा यह व्यवहार कि तुम उसकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दे रही हो।

यहां दुर्वासा के शाप की कल्पना करके कवि कालिदास ने दुष्यन्त को सहानुभूति का पात्र बना दिया है।

अलंकार– यहां पर दुर्वासा को न पहचानने का कारण शकुन्लता का दुष्यन्त के विचारों में डूबना बताया गया है अतः यहां काव्यलिंग अलंकार है।

'इव' शब्द का प्रयोग होने के कारण उपमा और 'प्रथम कृताम्' मे श्लिष्ट अर्थ होने से -श्लेषालंकार है।

इसमें वंशस्थ छंद का प्रयोग हुआ है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

नेपथ्ये– अभिनेता जहाँ पर नाटक के लिए उपयुक्त वेशभूषा धारण करते हैं उसे नेपथ्य कहते हैं। 'कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।'

पर्दे के पीछे से जो बात कही जाती है उसे 'नेपथ्ये' या 'नेपथ्य में' कहते हैं। 'अयमहं भोः'– यह बोलचाल का संक्षिप्त वाक्य है। पूरा वाक्य है–

'अयमहम् आगतः, भोः कोऽत्र वर्तते?

अर्थात् यह मैं आया हूं, यहां कौन है?

समास

अतिथिपरिभाविनि– अतिथिं परिभवितुं शीलं यस्याः सा। बहुव्रीहि समास

अनन्यमानसा– अविद्यमानम् अन्यत् यस्य तत् अनन्यम्। अनन्य 'मानस' यस्याः सा अनन्यमानसा। बहुव्रीहि समास

तपोधनम्– तपः एव धनं यस्य सः तपोधनः तम्। बहुव्रीहि समास

पदपरिचय

संनिहिता– सम्+नि+धा धातु+क्त+टाप् प्रत्यय प्रथमा विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग

बोधितः– बुध् धातु+क्त प्रत्यय+णिच्, प्रथमा एकवचन पुल्लिंग

कारक

एतावद्भिः कुसुमैः–अलम् (बस करो) के योग में कुसुमैः में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। एतावद् कुसुमों का विशेषण है अतः इसमें भी वही विभक्ति प्रयुक्त हुई जो कुसुम में हुई।

.....

प्रियवंदा– हा धिक् हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराधा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन्कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिर्वृत्तः। (हद्धी हद्धी। अप्पिअंएव्व संवुत्तं। कस्मिं पि पुआसहे अवरुद्धा सुण्णहिंअआ सउन्दला। ण हुस्सिं कस्मिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसि। तह सविअ वेअबलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो।)

अनुवाद– प्रियंवदा– हाय धिक्कार है धिक्कार है। बुरा (अनर्थ) ही हो गया। शून्यहृदय (याद में खोई हुई) शकुन्लता ने किसी पूजनीय के प्रति अपराध कर दिया है। (सामने देखकर) निस्सन्देह जिस किसी के प्रति नहीं (अपितु) आसानी से क्रोध को प्राप्त करने वाले (अत्यन्त शीघ्र क्रोधित हो जाने वाले) यह महर्षि दुर्वासा हैं। वैसा शाप देकर वेग के कारण बढ़ी हुई, न रोकी जा सकने वाली गति से वापस चले गए हैं।

अनसूया– कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति। गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि। (को अण्णे हुतवहादो दहिदुं पहवदि। गच्छ। पादेखु पणमिअ णिवत्तेहिणं जाव अहं अग्घौदअं उक्कप्पेमि।)

अनसूया– आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? जाओ (उनके) पैरों में प्रणाम करके इन्हें वापिस ले आओ। जब तक मैं अर्घ्य और जल (उनके सत्कार के लिए) तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा– तथा। (तह।)

(इति निष्क्रान्ता।)

प्रियंवदा– अच्छा।

(इस प्रकार (कहकर) निकल जाती है।)

अनसूया– (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात्पुष्पभाजनम्। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति।) (अम्मो आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।)

अनसूया– (कुछ कदम चलकर लड़खड़ाने का अभिनय करके) अरे! घबराहट से लड़खड़ाती हुई गति के कारण मेरे हाथ से पुष्पों का पात्र गिर गया। (ऐसा कहकर फूल चुनने का अभिनय करती है)

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा– सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। (सहि पकिदिवक्को सो कस्य अणुणअं पडिगेव्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।)

प्रियंवदा– सखि! स्वभाव से ही कुटिल वह किसकी प्रार्थना को स्वीकार करते? (करेंगे)। परन्तु (मेरे द्वारा) थोड़े से दयालु बना लिए गए।

अनसूया– (सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। (तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि।)

अनसूया– (मुस्कुराहट के साथ) उनके विषय में इतना भी बहुत है। बताओ (क्या हुआ)?

प्रियंवदा– यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति। (जदा णिवत्तिदुं ण इच्छादि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढमत्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।)

प्रियंवदा– जब (उन्होंने) वापस नहीं लौटना चाहा तो मेरे द्वारा निवेदन किया गया, भगवन्! (आपके) तप के प्रभाव को न जानने वाली अपनी पुत्री का पहला एक अपराध क्षमा कर दिया जाना चाहिए।

अनसूया– ततस्ततः। (तदो तदो)।

अनसूया– तब क्या हुआ?

प्रियंवदा– ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः। (तदो ण मे वअणं अण्णहा भविदुं अरिहदि किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणे साबो णिवत्तिस्सदितिमन्तअन्तो एव्व अन्तरिहिदो।)

प्रियंवदा– तब मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता परन्तु पहचान का आभूषण दिखाने से शाप समाप्त हो जाएगा। ऐसा कहते हुए ही अन्तर्धान हो गए।

अनूसया– शक्यमिदानीमाश्वसितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयांकितमंगुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन्स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति। (सक्कं दाणिं अस्ससिंदु। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंगकिअंअङगुलीअअं सुमरणअित्तिं सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोबाआ सउन्दला भविस्सदि।)

अनसूया– अब आश्वस्त (तसल्ली) हुआ जा सकता है। उस राजर्षि के द्वारा जाते समय अपने नाम से अंकित अंगूठी स्मृतिचिह्न (निशानी) के रूप में स्वयं (शकुन्तला की अंगुली में) पहना दी गई थी। उससे शकुन्तला (शाप निवृत्ति के) उपाय में स्वतन्त्र हो जाएगी।

प्रियंवदा– सखि, एहि। देवकार्य तावद् निर्वर्तयावः। (सहि, एहि। देक्कज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।)

प्रियंवदा– सखि! आओ तब तक देवपूजा इत्यादि कार्य को पूरा कर लें।

(इति परिक्रामतः।)

(ऐसा कहकर दोनों घूमती हैं)

प्रियंवदा– (विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्। (अणसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भतुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअं।)

प्रियंवदा– (देखकर) अनसूया जरा देखो तो। बांए हाथ पर मुख रखे हुए (हमारी) प्रियसखी चित्र लिखित सी (दिखाई दे रही है) पति के चिन्तन से यह स्वयं को भी नहीं जान पर रही फिर अतिथि की तो बात ही क्या?

अनसूया– प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। (पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिठ्टदु। रक्खिदव्या क्खु पकिदिपेलवा पिअसही।)

अनसूया– प्रियंवदा, यह वृत्तान्त हम दोनों के मुख में ही रहे अर्थात् हम दोनों के ही बीच रहे। स्वभाव से ही कोमल प्रियसखी की निश्चित रूप से रक्षा की जानी चाहिए। (शाप की बात सुनकर उसे चोट पहुँचेगी)

प्रियंवदा– को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति। (कोणाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि।)

(इत्युमे निष्क्रान्ते)

विष्कम्भकः।

प्रियंवदा– भला कौन नवमालिका को गर्म जल से सींचेगा?

(यह कहकर दोनों निकल जाती हैं)

विष्कम्भक समाप्त।

व्याख्या– जब प्रियंवदा और अनसूया कुटिया पर पहुँची तब तक दुर्वासा ऋषि शकुन्लता को शाप देकर वापस लौट रहे थे। प्रियंवदा यह तो समझ गई कि किसी पूजनीय के प्रति शकुन्तला से अपराध हो गया परन्तु जब उसने देखा कि अरे यह तो दुर्वासा मुनि है तो वह अत्यधिक घबरा गई क्योंकि वे साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे तो उग्र स्वभाव के थे जिन्हें क्रोध बहुत जल्दी आ जाता था। शाप देकर क्रोध सहित वे जल्दी-जल्दी बढ़ते हुए चले गए जिन्हें रोक पाना उन दोनों सखियों के लिए असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य था।

यह सुनकर अनसूया कहती है कि 'आग के अतिरिक्त कौन जला सकता है? आग का स्वभाव केवल जलाना है। वह किसी में कुछ भी भेदभाव किए बिना निर्दयतापूर्वक सबको जला देती है इसी प्रकार दुर्वासा भी शकुन्लता की मनःस्थिति, उसकी कोमलता, मधुरता, स्निग्धता आदि सब की उपेक्षा कर छोटे से अपराध के कारण इतना कठोर और भयंकर शाप देकर चले गए। यहाँ दुर्वासा की तुलना अग्नि से की गई है।

अनसूया प्रियंवदा से तुरन्त ही उनके पास जाकर पैरों पर गिरकर क्षमायाचना कर जैसे-तैसे उन्हें वापस ले आने को कहती है जब तक वह स्वयं उनके लिए अर्ध्य और जल तैयार करती है। पहले जब कोई अतिथि आता था तो जल से उसके चरण धोए जाते थे और तत्पश्चात् अर्ध्य (भोज्यादि) दिया जाता था। अनसूया ने प्रियंवदा को दुर्वासा ऋषि के पास शायद इसलिए भेजा कि वह अपने प्रिय वचनों से उनका क्रोध शान्त कर सके और उनकी कुछ कृपा हो जाए। घबराहट में अनसूया के हाथ से पूजा के लिए चुने गए फूलों के पात्र का गिरना उसकी मनः स्थिति को बताता है कि वह शकुन्लता के शाप शान्ति के लिए इतनी चिन्तित है कि उसे जल और अर्ध्य भी तैयार करना है और इस जल्दी में गिरे हुए फूलों को उठाने का काम भी बढ़ गया। यह अत्यन्त नाटकीय ढंग से कालिदास ने अनसूया की विवशता और व्याकुलता को दिखाया है। इसके अतिरिक्त पुष्पभाजन का गिरना अपशकुन भी है तथा दुर्वासा के न लौटने को सूचित करता है। प्रियंवदा द्वारा अनेक प्रकार से अनुनय विनय किए जाने पर भी दुर्वासा आश्रम में वापस आने के लिए तैयार नहीं हुए क्योंकि वे स्वभाव से ही कुटिल हैं और स्वभाव कभी भी नहीं बदलता 'स्वभावो दुरतिक्रमः'। प्रियंवदा फिर भावुकता का आश्रय लेती है और विनती करती है कि शकुन्लता को उनके तपोबल का ज्ञान नहीं है वह तो उनकी पुत्री के समान है अतः यह उसका प्रथम अपराध समझकर उसे क्षमा कर दिया जाना चाहिए। ऐसा कहे जाने पर उनका हृदय थोड़ा सा ध्यानयुक्त हुआ और उन्होंने कहा कि मेरा वचन असत्य व मिथ्या नहीं हो सकता परन्तु यदि पहचान के लिए कोई आभूषण राजा को दिखा दिया जाएगा तो शाप का प्रभाव समाप्त हो जाएगा और राजा की स्मृति पुनः वापस आ जाएगी। यह सुनकर अनसूया आश्वस्त हो जाती है क्योंकि उसे ज्ञात है कि शकुन्लता के पास दुष्यन्त के नाम से चिह्नित अंगूठी है और उसे दिखाकर वह शाप की निवृत्ति स्वयं कर सकती है। जब अनसूया और प्रियंवदा कुटिया में पहुंचती हैं तो पति के ध्यान में मग्न शकुन्लता अपने बाँए हाथ पर मुख रखे ऐसी निश्चल बैठी थी कि वह चित्रलिखित सी प्रतीत हो रही थी। उस समय उसे अपनी ही सुधबुध नहीं थी फिर किसी के आगमन के विषय में वह कैसे जान सकती थी? शकुन्लता

स्वभाव से ही बहुत कोमल तथा सुकुमार थी अतः दोनों सखियां उसे दुर्वासा के शाप के विषय में न बताने का निश्चय कर लेती हैं। प्रियंवदा कहती है कि शकुन्लता को शाप की बात बताना उसके जीवन को संकट में डालना हैं। जिस प्रकार नवमालिका को उष्ण जल से सींचना अत्यन्त क्रूर और निर्दयतापूर्वक कार्य है उसी प्रकार शकुन्लता को शाप के विषय में बताना भी कठोर और निर्दयतापूर्ण कार्य होगा।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

दुर्वासा– दुर्वासा का अर्थ है– 'दुष्टः दुःसाध्यो वा वासः यस्य' जिसे बड़ी कठिनता से रोका जा सकता है अर्थात् जो अच्छा अतिथि नहीं है अथवा 'दुष्टं वासः यस्यः सः' जो अपनी वेशभूषा के लिए सावधान नहीं है। यह नाम एक ऋषि का था जो अत्रि और अनसूया के पुत्र थे जो अपने कठोर व क्रोधी स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हैं।

अर्ध्य– किसी देवता या सामान्य व्यक्ति को सादर दी गई आहुति या उपहार अर्ध्य कहलाता है। अर्ध्य आठ वस्तुओं से बनता है– जल, दूध, कुशाग्र, दही, घी, चावल, जौं और सरसों।

आपः क्षीरं कुशाग्रश्च दधि सर्पिः सतण्डुलम्।
यवः सिद्धार्थकश्चैवाष्टांगोऽर्घः परिकीर्तितः।।

समास

महर्षि– महान् चासौ ऋषिश्च। कर्मधारय

वेगबलोत्फुल्लया– वेगस्य बलम् इति वेगबलम् (तृ. तत्पुरुष) तेन उत्फुल्लया या सा वेगबलोत्फुल्लया। बहुव्रीहि

दुर्वारया– दुःखेन वारितुं शक्या या सा तया। बहुव्रीहि

प्रकृतिवक्रः– प्रकृत्या वक्रः यः सः। बहुव्रीहि

वामहस्तोपहितवदना– वामे हस्ते उपहितं वदनं यस्याः सा। बहुव्रीहि

प्रकृतिपेलवा– प्रकृत्या पेलवा (तृतीया तत्पुरुष)

पदपरिचय

विज्ञापितः – वि+ज्ञा धातु+णिच् प्रत्यय+क्त प्रत्यय प्रथमा विभक्ति, एकवचन, पुल्लिंग।

मन्त्रयन्– मन्त्र् धातु+शतृ प्रत्यय, प्रथमा एकवचन पुल्लिंग।

पिनद्धम्– अपि+नह् धातु+क्त प्रत्यय, प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग।

कारक

पूजार्हे– जिस के प्रति अपराध किया जाता है उसमें सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त होती है।

हुतवहात्– 'पश्र्थाग्नवनानानामिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' से विना के अर्थ में 'हुतवह' में पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

आवेगस्खलितयागत्या– यहां 'हेतौ' से तृतीया का प्रयोग है क्योंकि स्खलित गति पुष्पभाजन गिरने का हेतु हैं।

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः)

(तत्पश्चात् सोकर उठा हुआ शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः–वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्।

तथा हि–

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतारुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।

तेजोद्वयस्य युगपद्वयसनोदयाभ्यां

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।।2।।

अन्वयः- एकतः ओषधीनाम् पतिः अस्तशिखरम् याति। एकतः अरुण पुरः सरः अर्कः आविष्कृतः। तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसन-उदयाभ्याम् इवलोकः आत्मदशान्तरेषु नियम्यते।

शिष्यः प्रवास से वापस आए हुए आदरणीय कण्व के द्वारा मुझे समय देखेन के लिए आदेश दिया गया है तो प्रकाश में निकल कर (मैं) देखता हूं कि रात्रि का कितना (भाग) शेष है अर्थात् कितनी रात्रि शेष है। (घूमकर और देखकर) अरे प्रातःकाल हो गया क्योंकि-

एक तरफ औषधियों का स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है (और) एक अर्थात् दूसरी तरफ अरुण को आगे करके सूर्य प्रकट हो रहा है। दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय होने से मानों संसार अपनी विभिन्न दशाओं में नियन्त्रित किया जा रहा है।

व्याख्या-प्रस्तुत श्लोक में दो बातों पर बल दिया है प्रथम तो यह कि समय का अनुमान प्राचीन काल में सूर्य और चन्द्रमा की गति के आधार पर किया जाता था उस समय घड़ी नहीं होती थी दूसरा यह कि सूर्य और चन्द्रमा का उदय और अस्त होना यह बताता है कि जीवन में सुख और दुःख का चक्र निरन्तर चलता रहता है मनुष्य को ऐसी परिस्थिति में धैर्य नहीं खोना चाहिए। इस श्लोक में भी यही बताया गया है कि कालिदास के युग में भी समय का अनुमान सूर्य के प्रकाश को देखकर ही लगाया जाता था इसलिए कण्व ऋषि का शिष्य भी समय को जानने के लिए बाहर जाता है और देखता है कि प्रातःकाल हो गया क्योंकि चन्द्रमा अस्त हो रहा है और सूर्य उदय हो रहा है। इस प्रकार यहां चन्द्र और सूर्य इन दो तेज पुंजों के एक साथ अस्त और उदय होने से मानो संसार को यह उपदेश दिया जा रहा है कि विषम और सम, अनुकूल और प्रतिकूल, अच्छी व बुरी अवस्था जीवन में आती रहती है। इसलिए हिम्मत से काम लेना चाहिए और क्रियाशील रहना चाहिए क्योंकि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख तो आने ही है। कहा भी है-

सुखस्यानन्तरं दुःखं, दुःखस्यानन्तरं सुखम्।

चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च।।

अर्थात् सुख और दुःख जीवन में चक्र के समान घूमते हैं। यह श्लोक इस बात की ओर संकेत देता है कि पहले शकुन्तला पर विपत्ति आएगी परन्तु बाद में सुख मिलेगा।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

पतिरोषधीनाम्- चन्द्रमा को औषधिपति कहा गया है क्योंकि औषधियाँ (वनस्पति) चन्द्रमा की किरणों से बढ़ती हैं एवं औषधियों वाली शक्ति प्राप्त करती हैं- पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः (गीता)।

अरुण- अरुण को सूर्य का सारथि कहा गया है क्योंकि पहले अरुणोदय होता है और तत्पश्चात् सूर्योदय। सूर्योदय से पूर्व आकाश में व्याप्त होने वाली लालिमा अरुण है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार अरुण महर्षि कश्यप तथा गरुड़ के बड़े भाई है। जाँघरहित होने के कारण इसे 'अरुण' कहा गया है।

समास

तेजोद्वयस्य- द्वयोः तेजसोः समाहारः इति तेजोद्वयं तस्य (द्विगु समास)

व्यसनोदयाम्याम्- व्यसनश्च उदयश्च इति व्यसनोदयौ (द्वन्द्व समास) ताभ्याम् इति।

आत्मदशान्तरेषु- आत्मनः दशानाम् अन्तराणि आत्मदशान्तर (तत्पुरुष) तेषु इति।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, तुल्ययोगिता, उत्प्रेक्षा, यथासंख्या अलंकार हैं।

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे

दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य

दु:खानि नूनमतिमात्रसुदु:सहानि।।3।।

अन्वय– शशिनि अन्तर्हिते संस्मरणीय शोभा सैव कुमुद्वती मे दृष्टिम् न नन्दयति। नूनम् इष्ट प्रवासजनितानि दु:खानि अबलाजनस्य अतिमात्र सुदु:सहानि।

अनुवाद– और भी–

चन्द्रमा के छिप जाने पर (अस्त हो जाने पर) स्मरणीय शोभा वाली वही कुमुदिनी मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं कर रही। निस्सन्देह प्रिय के परदेस चले जाने से उत्पन्न दु:ख स्त्रियों के लिए अत्यधिक कठिनता से सहने योग्य हो जाते हैं।

व्याख्या– शिष्य जब देखता है कि सुबह का समय हो गया है तो उस समय उसे कुमुदिनी भी मुरझाई सी दिखाई देती है। क्योंकि जब सूर्योदय होता है तो चन्द्रमा अस्त हो जाता है और कुमुदिनी चन्द्रमा के उदित होने पर विकसित होती है अर्थात् खिल उठती है और अस्त होने पर मुरझा जाती है और उसकी शोभा एक यादगार ही बन कर रह जाती है। कवि ने चन्द्रमा और कुमुदिनी का संबंध एक प्रेमी युगल के संबंध के समान बताया है जिस प्रकार चन्द्रमा रूपी प्रिय के अन्यत्र चले जाने पर कुमुदिनी उसके विरह को सहन नहीं कर पाती उसी प्रकार अपने प्रियतम के परदेस चले जाने से कोमल स्त्रियाँ भी उनके विरह-दु:ख को सहन नहीं कर पातीं और दुर्बल व कान्तिहीन हो जाती हैं।

यहां शकुन्तला की ओर भी इशारा किया गया है कि कैसे वह दुष्यन्त के विरह में दु:खी व म्लान है।

यहां समासोक्ति, काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

समास

संस्मरणीयशोभा- संस्मरणीया शोभा यस्या: सा। (बहुव्रीहि)

इष्टप्रवासजनितानि- इष्टस्य प्रवासात् जनितानि। (षष्ठी पंचमी तत्पुरुष)

अतिमात्रसुदु:सहानि- अतिमात्रं सुदु:सहानि। (कर्मधारय)

.....

(प्रविश्यांपटीक्षेपेण)

(पर्दा हटाए बिना प्रवेश करके)

अनसूया-यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्य जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। (जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण ख्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।)

अनसूया- यद्यपि विषयों से (सांसारिक भोग विलास) विमुख व्यक्ति (हम लोगों) को ये सब बातें ज्ञात नहीं है तथापित (फिर भी इतना निश्चित है कि) उस राजा के द्वारा शकुन्तला के प्रति अशिष्ट व्यवहार किया गया है।

शिष्य:- यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्त:)

शिष्य:- तो जब तक उपस्थित हुए यज्ञ के समय के विषय में (मैं) गुरु जी से निवेदन करता हूं। (अर्थात् गूरु जी को बताता हूँ कि हवन का समय हो गया है)

(इस प्रकार (ऐसा कहकर) निकल जाता है)।

अनसूया- प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानी सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्ध हृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वासस: शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत: कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमंगुलीयकं तस्य विसृजाव:। दु:खशीले तपस्विजने

कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्यंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्। (पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिजजेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो क्षणिं सकामो होदु, जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससो सावो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसजजेदि। ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं तस्स विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्वससिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थगदे इम्हेहिं किं करणिज्जं।)

अनसूया-जागी हुई भी क्या करूंगी? अपने उचित (दैनिक) कार्यों में भी मेरे हाथ पैर नहीं चल रहे। कामदेव अब सफल मनोरथ हो, जिसने झूठी प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति (दुष्यन्त) के प्रति निष्कपट हृदय (सरल मन) वाली सखी (शकुन्तला) का प्रेम कराया है। अथवा दुर्वासा का शाप (ही) यह गड़बड़ कर रहा है। नहीं तो कैसे वह राजर्षि उस प्रकार की (मीठी) बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी नहीं भेजता। तो फिर यहाँ से यह पहचान के लिए दी गयी अंगूठी हम उसके पास भेजती है। कष्ट सहने की आदत वाले तपस्वियों में से किससे प्रार्थना की जाए (कि यह संदेश दें) हमारी सखी (शकुन्तला) पर दोष आएगा यह सोचकर (कहने के लिए) निश्चय कर लेने पर भी प्रवास से लौटे हुए तात कण्व को दुष्यन्त द्वारा विवाह की गई और गर्भवती शकुन्तला के विषय में बताने में असमर्थ हूं। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर हमारे द्वारा क्या किया जाना चाहिए अर्थात् हम क्या करें क्या न करें कुछ समझ में नहीं आता।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

अपटीक्षेपेण- पट्याः क्षेपः पटीक्षेपः न पटीक्षेपः अपटीक्षेपः तेन।

संस्कृत नाटकों में प्रायः पात्र रंगमंच पर तभी प्रवेश करता है जब उसे इसका (प्रवेश करने का) संकेत मिलता है- 'नासूचितः पात्र प्रवेशो भवेत।' परन्तु जब कोई बात सहसा सूचित करनी हो तो पात्र पर्दे को झटका देकर रंगमंच पर आता है पर्दा उठाया नहीं जाता। यही 'अपटीक्षेप' कहलाता है अर्थात् पर्दे को उठाए बिना ही हाथ से पर्दा हटाकर प्रवेश करना।

यहां अनसूया का संकेत प्राप्त किए बिना पर्दा हटाकर रंगमंच पर आना उसकी अत्यधिक व्याकुलता चिन्ता व उत्कण्ठा का सूचक है। अनसूया दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के प्रति किए गए व्यवहार से चिन्तित है। उसे प्रतीत होता है कि राजा ने शकुन्तला के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं किया कि कण्व की अनुपस्थिति में उससे विवाह भी कर लिया वह गर्भवती भी हो गई और अब इतना अधिक समय बीत जाने पर भी वह शकुन्तला के लिए न तो कोई समाचार भेज रहा है और न ही आश्रम से उसे अपने साथ ले जाने के लिए आ रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

विषयपराङ्मुखस्य- विषयेभ्यः, पराङ्मुखः यः सः पराङ्मुखः तस्य। (बहुव्रीहि)

हस्तपादम्- हस्तौ च पादौ च एतयोः समाहारः हस्तपादम्। (द्वन्द्व)

आपन्नसत्त्वाम्- सत्त्वम् आपन्ना अथवा आपन्नं सत्त्वम् अनया सा ताम् (बहुव्रीहि)

दुष्यन्तपरिणीताम्- दुष्यन्तेन परिणीताम्। (तृतीया तत्पुरुष)

(प्रविश्य)

प्रियंवदा- (सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। (सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं।)

प्रियंवदा- (प्रसन्नतापूर्वक/सखी शकुन्तला की विदाई के मांगलिक (शुभ) कार्यों को पूरा करने के लिए जल्दी करो, जल्दी करो।

अनसूया- सखि कथमेतत्। (सहि, कहं एदं।)

अनसूया- सखि, यह कैसे (हुआ)?

प्रियंवदा- श्रृणु। इदानीं सुखशयितपृच्छिकाशकुन्तलासकाशं गताऽस्मि। (सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि।)

प्रियंवदा- सुनो। 'सुख पूर्वक सोना हुआ कि नहीं' यह पूछने के लिए मैं अभी-अभी शकुन्तला के पास गयी थी।

अनसूया- ततस्ततः। (तदो तदो।)

अनसूया- तब क्या हुआ?

प्रियंवदा- तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति। (दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं। दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अजज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विराज्जेमित्ति।)

प्रियंवदा- तब लज्जा (शर्म) के कारण झुके हुए मुख वाली उसे (शकुन्तला को) गले लगाकर पिता काश्यप के द्वारा इस प्रकार अभिनन्दन (स्वागत) किया गया- सौभाग्य से धुएं से धूमिल (व्याकुल) दृष्टि वाले भी यजमान की आहुति अग्नि में ही पड़ी है। पुत्री, योग्य शिष्य को प्रदान की गयी विद्या की तरह तुम अशोचनीय (जिसका शोक न किया जाए) हो गयी हो। आज ही ऋषियों से सुरक्षित करके तुमको (तुम्हारे) पति के पास भेज रहा हूं।

अनसूया- अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः। (अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।)

अनसूया- अच्छा, यह समाचार पिता काश्यप को किसके द्वारा बताया गया?

प्रियंवदा- अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या। (अग्गिसरणं पविट्टस्स सरीर विना छनदोमईए वाणिआए।)

प्रियंवदा- यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए (उनको (कण्व को) अशरीरधारी छन्दोमयी वाणी के द्वारा (यह सूचना दी गयी)।

अनसूया- (सविस्मयम्) कथमिव (कहं विअ।)

अनसूया- (आश्चर्य के साथ) किस प्रकार?

प्रियंवदा- (संस्कृतमाश्रित्य)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव।।4।।

अन्वय- ब्रह्मन्, दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

(संस्कृतभाषा का सहारा लेकर अर्थात् संस्कृत में बोलती है)

प्रियंवदा- हे ब्रह्मन्! दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को पृथ्वी के कल्याण के लिए धारण करने वाली (अपनी) पुत्री को छिपी हुई अग्नि से युक्त शमी वृक्ष के समान जानो।

व्याख्या- अनसूया जब यह सोच रही थी कि शकुन्तला की बात कण्व ऋषि को बताई जाए या नहीं? वह इस अहापोह में थी कि क्या किया जाए? तभी प्रियंवदा ने उसे शुभ समाचार दिया कि शकुन्तला को पिता कण्व प्रति गृह के लिए विदा कर रहे हैं और विदाई के मंगल कार्य जल्दी से जल्दी किए जाने हैं। तब अनसूया पूछती है कि शकुन्तला के विवाह का यह समाचार कण्व ऋषि को किसने दिया तब प्रियंवदा बताती है कि तात कण्व ने जब यज्ञशाला में प्रवेश किया तो छन्दोमयी वाणी द्वारा उन्हें शकुन्तला के विषय में सब कुछ बता दिया गया जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने खुशी से शकुन्तला को गले लगा लिया और कहा कि जिस प्रकार धुंए से बन्द आंखे होने पर भी यजमान के द्वारा डाली गई आहुति ठीक स्थान अग्नि में ही गिरती है इधर-उधर नहीं

पड़ती उसी प्रकार सौभाग्य से शकुन्तला भी दुष्यन्त के द्वारा ग्रहण की गई है। महर्षि कण्व की अनुपस्थिति में ही शकुन्तला द्वारा अपने अनुरूप वर को चुन कर विवाह कर लेना कण्व मुनि का सौभाग्य है। इसी कारण उन्होंने शकुन्तला का अभिनन्दन किया।

यहां कण्व मुनि की तुलना यजमान से शकुन्तला की आहुति से तथा दुष्यन्त की पावक (अग्नि) से की गई है।

जिस प्रकार सुयोग्य और सुपात्र को दी गई विद्या की अभिवृद्धि होती है वह शोचनीय न होकर अभिनन्दनीय हो जाती है उसी प्रकार शकुन्तला रूपी विद्या भी योग्य सुपात्र दुष्यन्त के पास जाकर अभिनन्दनीय हो गई है। यहां ऋषि कण्व को गुरू, दुष्यन्त को योग्य शिष्य तथा शकुन्तला को विद्या रूप में कल्पित किया गया है।

यज्ञशाला में प्रवेश करते ही छन्दोमयी वाणी द्वारा पिता कण्व को बताया गया कि हे ब्रह्मन्! तुम्हारी पुत्री दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज से उसी प्रकार युक्त है जिस प्रकार शमी वृक्ष अग्नि से युक्त होता है। इससे कण्व मुनि को ज्ञात हो जाता है कि शकुन्तला का विवाह दुष्यन्त से हो गया है वह गर्भवती है। उनका पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा।

प्रियंवदा वैसे तो प्राकृतभाषा में ही बोलती है परन्तु छन्दोमयी वाणी को वैसा का वैसा बताने के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग करती है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

कौतुकम्- कौतुक का शाब्दिक अर्थ है आनन्दमिश्रित आश्चर्य अथवा उत्सुकता। किन्तु कौतुक शब्द को इस प्रकार भी स्पष्ट किया गया है- 'मंगलार्थं सुधागैरिकलेपादि यत् क्रियते तत् कौतुकमुच्यते।' (चारित्रवर्धन) वे कार्य जो शुभ मंगल अवसर पर सम्पन्न हों उन्हें कौतुक कहा गया है। प्रस्थान कौतुक से तात्पर्य प्रस्थान समय के मंगल, पतिगृह के लिए विदा के अवसर पर किए जाने वाले मंगलाचार।

अग्निशरणम्- यज्ञशाला को अग्निशरण कहते हैं। इसमें तीन कुण्ड बने होते हैं। तीनों में तीन अग्नियां स्थापित रहती हैं। इनके नाम हैं- गार्हपत्य अग्नि, आह्वनीय अग्नि और दक्षिण अग्नि।

शमीवृक्ष- इस वृक्ष की लकड़ियों को थोड़ा सा रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है अतः उसके भीतर अग्नि गुप्त रूप में रहती है। महाभारत के अनुशासन पर्व में यह कथा है कि देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर अग्नि ने शिव के वीर्य को धारण कर लिया परन्तु उसको सहन न कर सकने के कारण वह पहले पीपल में और बाद में शमीवृक्ष में प्रविष्ट हो गया। उसे ढूंढकर देवताओं ने शमी को ही अग्नि का स्थान बना दिया।

समास

प्रस्थानकौतुकम्- प्रस्थानस्य कौतुकम्। (षष्ठी तत्पुरुष)

सुखशयितपृच्छिका- सुखेन शयितम् इति सुखशयितम्। (तृतीय तत्पुरुष) तत् पृच्छतीति पृच्छिका। प्रच्छ् धातु+ण्वुल्+टाप्, प्रथमा एकवचन स्त्रीलिंग

लज्जावनतमुखीम्- लज्जाया अवनतम् मुखम् यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)

धूमाकुलितदृष्टेः- धूमेन आकुलिता दृष्टिः यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि)

सुशिष्यपरिदत्ता- सु शोभनः शिष्यः सुशिष्यः (अव्ययीभाव) सुशिष्याय परिदत्ता (चतुर्थी तत्पुरुष)

ऋषिरक्षिताम्- ऋषिभिः रक्षिताम्। (तृतीया तत्पुरूष)

अग्निगर्भाम्- अग्निः अस्ति गर्भे यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)

व्याकरणात्मक टिप्पणी

प्रविष्टस्य - प्र+विश्+क्त प्रत्यय षष्ठी एकवचन पुल्लिंग।

आहितम्- आ+धा धातु+क्त द्वितीया एकवचन पुलिलंग।

दधाना- धा धातु+शानच्+टाप् प्रत्यय प्रथमा एकवचन स्त्रीलिंग।

अवेहि- अव+आ+इ धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष एकवचन।

.....

अनसूया- (प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे। किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि। (सहि, पिअं मे। कंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं परितोसं अणुहोमि।)

अनसूया- (प्रियंवदा को गले लगाकर) सखि मुझे अच्छा लगा किन्तु आज ही शकुन्तला (पतिगृह) ले जाई जा रही है इस कारण व्याकुलता से युक्त संतोष का अनुभव कर रही हूं।

प्रियंवदा- सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृत्ता भवतु। (सहि, व अं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु।)

प्रियंवदा- सखी हम अपने व्याकुल मन को बहला लेंगी अर्थात् अपने दुःख को किसी प्रकार दूर कर लेंगी। वह बेचारी (शकुन्तला) सुखी हो जाए।

अनसूया- तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मंगलसमालम्भनानि विरचयामि। (तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालान्तरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसण्णिहिदं करेहि। जाव अहंपि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वांकिसलआणि त्ति मंगलसमालंभणाणि विरएमि।)

अनसूया-तो इस आम की शाखा पर लटकते हुए नारियल के खोल में इसी अवसर के लिए लम्बे समय तक ताजी रहने वाली केसरमाला मेरे द्वारा रखी गई थी। तो इसे हाथ में ले लो तब तक मैं भी उसके लिए गोरोचन, तीर्थों की मिट्टी दूर्वा (दूब) के कोमल अंकुर आदि मांगलिक सामग्री एकत्रित करती हूँ।

प्रियंवदा- तथा क्रियताम्। (तह करीअदु।)

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति)

प्रियंवदा- ऐसा ही करो।

(अनसूया निकल जाती है। प्रियंवदा अभिनय पूर्वक फूलों को लेती है)

व्याख्या- शकुन्तला के पतिगृह जाने का समाचार सुनकर अनसूया एक ओर तो अत्यधिक प्रसन्न होती है परन्तु इस विचार से कि आज ही शकुन्तला से उनका वियोग हो जाएगा वह दुःखी हो जाती है। परन्तु प्रियंवदा उन दोनों की अपेक्षा शकुन्तला की प्रसन्नता को अधिक महत्त्वपूर्ण बताकर उसे आश्वस्त कर देती है। फिर अनसूया और प्रियंवदा विदाई के लिए मंगल सामग्री एकत्रित करने चली जाती हैं।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

नारिकेलसमुद्गके- नारियल के सम्पुट में। नारियल का ऊपर का थोड़ा हिस्सा काट कर उसको सरलता से पात्र (बर्तन) की तरह प्रयोग में ला सकते हैं।

गोरोचनाम्- यह गोमूत्र से निर्मित पीले रंग की होती है। इसका प्रयोग मांगलिक अवसरों पर किया जाता है।

समास

उत्कण्ठासाधारणम्- उत्कण्ठया साधारणम् (तृतीया तत्पुरूष)

नारिकेलसमुद्गके- नारिकेलस्य समुद्गके (षष्ठी तत्पुरूष)

मंगलसमालम्भनानि- मंगलस्य समालम्भनानि। (षष्ठी तत्पुरूष)

पाठ-4

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – चतुर्थ अङ्क
(मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्या : श्लोक 5-13)

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय।

(नेपथ्य में)

गौतमी! शार्ंगरव आदि को शकुन्तला को (पतिगृह) ले जाने के लिए आदेश दे दो।

प्रियंवदा- (कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते। (अणसूए, तुवर तुवर। एदे क्खू हत्थिणाऽरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।)

प्रियंवदा- (सुनकर) अनसूया, जल्दी करो, जल्दी करो। निश्चय ही हस्तिनापुर को जाने वाले ऋषि लोग बुलाए जा रहे हैं।

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

अनूसया- सखि, एहि। गच्छावः। (सहि, सहि। गच्छम्हा!)

(इति परिक्रामतः!)

(मांगलिक वस्तुएं हाथ में लिए हुए प्रवेश करके)

अनसूया-सखी, आओ। चलें।

(दोनों चारों ओर घूमती हैं)

प्रियंवदा- विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्। (एसा सुज्जोदए एव सिहामाज्जदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवअणिकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ। उवसप्पम्हणं।)

(इत्युपसर्पतः)

प्रियंवदा-(देखकर) सूर्योदय के समय ही सिर से स्नान की हुई यह शकुन्तला नीवार हाथ में लिए हुए, स्वस्ति वचनों का उच्चारण करने वाली तपस्विनियों के द्वारा अभिनन्दित की जाती हुई बैठी है।

(ऐसा कहकर दोनों (उसके) पास जाती हैं)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

(फिर बताए हुए कार्य को करती हुई आसन पर बैठी हुई शकुन्तला प्रवेश करती है)

तापसीनामन्यतमा- (शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमान-सूचकं महादेवीशब्दं लभस्व। (जादे, भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेई सद्दं लहेहि।)

तापसियों में से एक- (शकुन्तला के प्रति) पुत्री, पति के अत्यधिक आदर को सूचित करने वाले 'महादेवी' शब्द को प्राप्त करो।

द्वितीया- वत्से, वीरप्रसविनी भव। (वच्छे, वीरप्पसविणी होहि।)

दूसरी (तापसी)- पुत्री, वीर पुत्र को जन्म देने वाली हो (जाओ)।

तृतीया- वत्से, भर्तुर्बहुमता भव। (वच्छे, भत्तुणो बहुमद) होहि।)

तीसरी (तापसी)- पुत्री, पति का बहुत सम्मान प्राप्त करने वाली बनो।

(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ता:।)

(इस प्रकार आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर (अन्य तापसियां) चली जाती हैं।)

सख्यौ- (उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु। (सहि, सुहमज्जणं दे होदु।)

दोनो सखियां- (पास पहुँचकर) हे सखी तुम्हारा स्नान सुखप्रद हो। (अर्थात् तु सदा सुखी रहो)।

शकुन्तला- स्वागतं मे सख्यो:। इतो निषीदतम्। (साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह।)

शकुन्तला- मेरी सखियों, तुम्हारा स्वागत है। इधर बैठो।

उभे- (मंगलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मंगलसमालम्भनं विरचयाव:। (हला, सज्जा होहि। जाव दे मंगलसमालम्भणं विरएम।)

दोनों- (मांगलिक पात्रों को लेकर और बैठकर) सखी शकुन्तला, तैयार हो जाओ। अब हम लोग तुम्हारा मांगलिक अलंकरण (सजावट) करती हैं।

शकुन्तला- इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभभिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति। (इदं पि बहु मन्तव्यं। दुल्लहं दाणिं मे सही मण्डणं भविस्सदि।)

(इति वाष्पं विसृजति)

शकुन्तला- यह भी बहुत मानने के योग्य है अब मेरे लिए सखियों से अलंकृत होना दुर्लभ हो जाएगा।

(ऐसा कहकर आँसू बहाती है।)

उभे- सखि, उचितं न ते मंगलकाले रोदितुम्। (सहि उइणं दे ण मंगलकाले रोइदुं।)

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयत:)

दोनो- सखी, इस मंगल (शुभ) अवसर पर तुम्हारा रोना उचित नहीं है।

(ऐसा कहकर आंसुओं को पोंछकर सजाने का अभिनय करती है।)

प्रियंवदा- आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभै: प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। (आहरणोइदं रूपं अस्सममुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरी आदि।)

प्रियंवदा- आभूषणों के योग्य (शकुन्तला का यह सुन्दर) रूप आश्रम में प्राप्त (पुष्प आदि) प्रसाधनों से विकृत किया जा रहा है।

व्याख्या- भारतीय संस्कृति में प्रत्येक विशेष अवसर पर सिर से स्नान करना आवश्यक माना गया है। अत: पतिगृह जाने से पूर्व शकुन्तला ने भी सिर धोकर स्नान किया है। उसके बाद तापसियां नीवार (जंगली धान) हाथ में लेकर मंगल गान करती हुई उसे (शकुन्तला को) बधाई देती हैं। शुभ अवसरों पर खाली हाथ जाना शुभ नहीं समझा जाता इसलिए तापसियां नीवार हाथ में लेकर जाती हैं। तापसियां शकुन्तला को पतिप्रिया व वीर जननी होने का आशीर्वाद देती है। प्रियंवदा और अनसूया भी शकुन्तला के पास जाकर उसे कहती हैं कि तुम्हारा यह मांगलिक स्नान तुम्हारे वैवाहिक जीवन को खुश रखे। मांगलिक शृंगार का अभिप्राय यह है कि आश्रम में पर्याप्त साधन न होने के कारण पूरी तरह से शकुन्तला का मण्डन (शृंगार) किया जाना सखियों के लिए संभव नहीं था अत: एक सुहागिन स्त्री के लिए जो शृंगार अनिवार्य है केवल वही शृंगार शकुन्तला का भी किया जा सकेगा। शकुन्तला को आश्रम में प्राप्त होने वाले फूल पत्तों के आभूषण ही पहनाए जा रहे हैं अत: प्रियंवदा कहती है कि शकुन्तला का अनुपम सौन्दर्य तो रत्नमणिजटित स्वर्णाभूषणों के योग्य था परन्तु फूल पत्तों के आभूषणों से तो इसका सौन्दर्य कम ही किया जा रहा है। मांगलिक होने के कारण उन्हें पहनाना भी आवश्यक है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

हस्तिनापुर- कालिदास ने हस्तिनापुर को दुष्यन्त की राजधानी बताया है परन्तु हरिवंशपुराण में उल्लेख है कि हस्तिनापुर भरत के प्रपौत्र राजा हस्ती ने बसाया था।

समास

शार्ङ्गरवमिश्राः शार्ंगरवेण मिश्राः (तत्पुरूष) शार्ङ्गरव आदि। मिश्र शब्द मिश्रित या इत्यादि अर्थ में है। 'मिश्र' शब्द का दूसरा अर्थ पूज्य भी होता है। शार्ङ्गरवः प्रधानं पूज्यो वा येषां ते शार्ङ्गरवमिश्राः। (नित्य समास) जिसमें शार्ङ्गरव प्रमुख या पूजय हैं।

हस्तिनापुरगामिनः- हस्तिनापुरम् गन्तुम् प्रस्तुता ऋषयः।

शिखामज्जिता- शिखया मज्जिता (तत्पुरूष)

प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः- प्रतीष्टाः नीवाराः यैः एवं भूतौ हस्तौ यासाम्ताभिः। (बहुव्रीहि)

वीरप्रसविनी- वीरस्य प्रसविनी। (षष्ठी पत्पुरूष)

आभरणोचितम्- आभरणानाम् उचितम् (षष्ठी तत्पुरूष)

.....

(प्रविश्योपायनहस्तावृषिकुमारकौ)

(भेंट रूप में प्राप्त आभूषणों को हाथ में लिए हुए दो ऋषि कुमार प्रवेश करके)

उभौ-इदमलंकरणम्। अलंक्रियताम् अत्रभवती। (सर्वा विलोक्य विस्मिताः)

दोनों (ऋषि कुमार)- ये आभूषण हैं। (इनसे) इस देवी (शकुन्तला) को अलंकृत करें।

(उनको देखकर सभी आश्चर्यचकित होती हैं)

गौतमी- वत्स नारद, कुत एतत्। (वच्छ णारअ, कुदो एंद।)

गौतमी- पुत्र नारद, ये कहाँ से (प्राप्त हुए)?

प्रथमः तातकाश्यपप्रभावात्।

पहला ऋषि कुमार- पिता काश्यप के प्रभाव से।

गौतमी- किं मानसी सिद्धिः। (किं माणसी सिद्धिः।)

गौतमी- क्या (यह) मानसी सिद्धि है? अर्थात् क्या उन्होंने (काश्यप ने) इन्हें अपने मानसिक संकल्प से उत्पन्न किया है।

द्वितीयः- न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीम्-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरूणा मांगल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्योवनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।5।।

अन्वय- नः केनचित् तिरूणा इन्दुपाण्डु मांगल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः आपर्वभागोत्थितैः किसलयोद्भेद प्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

दूसरा ऋषि कुमार- निश्चित रूप से नहीं। सुनिए आदरणीय (कण्व) के द्वारा हमें आज्ञा दी गई कि शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल ले आओ। तो अब-

हमें (हमारे लिए) किसी वृक्ष के द्वारा चन्द्रमा के समान श्वेत (निर्मल) मांगलिक रेशमी वस्त्र प्रदान किया गया। किसी के द्वारा पैरों को रंगने योग्य महावर (आलता) प्रदान किया गया। अन्य के द्वारा कलाई तक उठे हुए (और) नवपल्लव के फूटने की (उद्भेद) प्रतिस्पर्धा करने वाले वनदेवताओं के हाथों द्वारा हमें आभूषण दिए गए।

व्याख्या- प्रियंवदा के यह कहते ही कि आभूषणों के योग्य शकुन्तला का सौन्दर्य आश्रम सुलभ प्रसाधनों से विकृत किया जा रहा है तो ऋषि कुमार आभूषणादि उपहार लेकर प्रवेश करते हैं। गौतमी पूछती है कि क्या कण्व मुनि ने इन्हें अपने मन के संकल्प से उत्पन्न किया है क्योंकि कण्व मुनि अपने तपोबल से मन से विचार मात्र करके कुछ भी उत्पन्न करने में समर्थ थे परन्तु ऋषि कुमार बताते हैं कि ये उनकी मानसी सिद्धि के परिणाम नहीं थे अपितु वे दोनों जब शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल लेने गए तो वृक्षों के द्वारा ये उपहार उन्हें दिए गए। किसी वृक्ष ने उन्हें शुभ अवसर पर पहने जाने योग्य मांगलिक रेशमी वस्त्र दिए, किसी ने महावर दिया तो कुछ वृक्षों ने वनदेवताओं के हाथों द्वारा ये आभूषण प्रदान किए जिन वन देवताओं के हाथ कलाई तक दिखाई दे रहे थे और वे नवपल्लव के फूटने के समान सुन्दर स्निग्ध कोमल और रक्तवर्ण थे।

वस्तुतः शकुन्तला प्रकृति कन्या थी। जिस प्रकार शकुन्तला का पेड़ पौधों लता पादपों के प्रति अत्यधिक प्रेम था उसी प्रकार उनका भी शकुन्तला के प्रति प्रेम था जैसा कि उनके द्वारा दिए गए उपहारों से पता लगता है

इस श्लोक में उपमालंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

मानसीसिद्धि- मन से किसी चाही वस्तु को प्राप्त करने की विद्या 'मानसी सिद्धि' है। कण्व ऋषि उच्च कोटि के योगी व मानसी सिद्धि के स्वामी थे। उनके लिए कहा है- 'स्वाधीन कुशलः सिद्धिमन्तः।'

लाक्षारस- यह लाल रंग का पदार्थ होता है। स्त्रियां इसे सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में अपने पैरों में लगाती हैं।

समास

चरणोपरागसुभगः- चरणयोः उपरागे सुभगः यः सः (बहुव्रीहि)

आपर्वभागोत्थितैः- पर्वभागं यावत् आपर्वभागम् (अव्ययीभाव समास)

आपर्वभागम् उत्थिताः ये ते आपर्वभागोत्थिताः तैः। (बहुव्रीहि)

किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः- किसलयानाम् उद्भेदाः इति किसलयोद्भेदाः। (षष्ठी तत्पुरूष) तेषां प्रतिद्वन्द्विभिः।

प्रतिद्वन्द्विभिः- द्वौ द्वौ द्वन्द्वम्। प्रतिगतं द्वन्द्वम् इति प्रतिद्वन्द्वम् प्रतिद्वन्द्वम् एषामस्तीति प्रतिद्वन्द्वी।

.....

प्रियंवदा- (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः। (हल इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि)।

(शकुन्तला व्रीडां रूपयति)

प्रियंवदा- (शकुन्तला को देखकर) सखी (वनस्पतियों की) इस कृपा से तुम्हारी पति के घर में अनुभव की जाने वाली राज्यलक्ष्मी सूचित हो रही है।

(शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है)

प्रथम- गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

पहला शिष्य- गौतम आओ, आओ। स्नान करके (नदी से) निकले काश्यप से वनस्पतियों की (इस) सेवा को निवेदित करें (बताएं)

द्वितीय- तथा।

(इति निष्क्रान्तौ)

दूसरा शिष्य- ठीक है।

(दोनों निकल जाते हैं।)

सख्यौ- अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनांगेषु त आभरणविनियोगं कुर्वः। (अए अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु द आहरणविणिओअं करेम्ह।)

दोनों सखियां- अरे हम लोगों ने कभी आभूषणों का प्रयोग नहीं किया है। चित्रकारी से परिचित होने से तुम्हारे अंगों पर (हम दोनों) आभूषण पहनाती हैं।

शकुन्तला- जाने वां नैपुणम्। (जाणे वो णेउणं।)

(उभे नाट्येनालंकुरुतः।)

शकुन्तला- मैं तुम दोनों की निपुणता जानती हूँ।

(दोनों अभिनयपूर्वक आभूषण पहनाती है)

वस्तुतः वनस्पतियों द्वारा शकुन्तला के लिए वस्त्राभूषणादि प्रदान किया जाना शुभ शकुन है और पतिगृह में शकुन्तला के लिए विशेष आदर सम्मान और ऐश्वर्य के सूचक हैं।

प्रियंवदा और अनसूया जब शकुन्तला का श्रृंगार करती है तो वे कहती हैं कि यद्यपि हम आभूषण नहीं पहनती परन्तु चित्रकला में जो हमने सीखा है उसी आधार पर हम तुम्हें आभूषण पहना देंगी या चित्रों में जिस अंग पर जिस आभूषण को देखा है उसी के अनुसार तुम्हें सजा देगी।

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः)

(तत्पश्चात् स्नान करके आए हुए काश्यप प्रवेश करते हैं)

काश्यपः-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।6।।
(इति परिक्रामति)

अन्वय- अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम् स्तम्भितवाष्प वृत्तिः कण्ठः कलुषः दर्शनम् चिन्ताजडम्। स्नेहात् तावत् मम अरण्य-औकसः ईदृशम् इदम् वैक्लव्यम् तनयाविश्लेष-नवैः दुःखैः गृहिणः कथम् नु न पीडयन्ते।।6।।

काश्यप-

अनुवाद- 'आज शकुन्तला चली जाएगी' इसी (विचार मात्र) से (मेरा) हृदय व्याकुलता से युक्त हो गया है। रोके गए आंसुओं के प्रवाह से गला रूंध गया है। दृष्टि चिन्ता के कारण जड़ हो गई है। स्नेह से जब मुझ वन में रहने वाले को इस प्रकार की यह व्याकुलता है तो पुत्री के वियोग के (पहली बार) नए नए दुःखों से गृहस्थी कितने अधिक पीड़ित होते होंगे।।6।।

(ऐसा कहकर घूमते हैं)

व्याख्या- इस श्लोक ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर स्नान करके लौटे हुए महर्षि कण्व अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आज शकुन्तला अपने पति के घर जाएगी यद्यपि उसकी अभी विदाई नहीं हुई है तो भी उसके वियोग की कल्पना मात्र से मेरा हृदय इतना अधिक व्याकुल हो रहा है इस समय इसे इतना कष्ट है तो फिर उसके विदा होने पर तो कैसी दशा होगी? उसकी विदाई से जो पीड़ा व व्याकुलता हो रही है उससे जो आंसू बह रहे है उसे रोकने के कारण गला रूंध गया है नज़रें धुंधली हो रही हैं व एकटक दृष्टि हो गई है। अर्थात् पूर्ण जड़वत् जैसी स्थिति ऋषि कण्व की हो गई है। ऐसी अपनी दशा पर विचार करके ऋषि कहते

हैं कि जब वन में निवास करने वाले को संसार एवं उसकी भावनाओं का पूर्णतया त्याग करने वाले मुझ वन में रहने वाले तपस्वी को, केवल पालन की गई अपनी पुत्री शकुन्तला की विदाई के अवसर पर ऐसी व्याकुलता का अनुभव हो रहा है तो जो लोग संसारचक्र में फंसे हुए हैं, मोहमाया के बंधन में पूरी तरह जकड़े हुए हैं उन गृहस्थीजनों को अपनी जन्म दी गई तथा पालितपुत्री की विदाई के समय नए नए वियोग में भला किस प्रकार के कष्ट और पीड़ा का अनुभव होता होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह श्लोक चतुर्थ अंक के चार सर्वश्रेष्ठ श्लोकों में यह प्रथम सर्वश्रेष्ठ श्लोक है। इसमें शकुन्तला के पतिगृह जाने के विचारमात्र से ही उत्पन्न महर्षि कण्व की मनः स्थिति का अत्यन्त सजीव स्वाभाविक मार्मिक एवं हृदयग्राही मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग मुनि की अपेक्षा गृहस्थी को अधिक विकल बताने के कारण हुआ है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

वनस्पति- वनस्पति से साधारणतया वृक्ष मात्र का ग्रहण किया जाता है, किन्तु मनु के अनुसार जिन वृक्षों पर बिना फूल के फल आते हैं वे वनस्पति हैं- अपुष्पाः फल्वन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः (मनुस्मृति 1/47)

समास

अभिषेकोत्तीर्णाय- अभिषेकम् (कृत्वा) उत्तीर्णाय।

वनस्पतिसेवाम्- वनस्पतीनाम् सेवाम् (षष्ठी तत्पुरूष)

चित्रकर्मपरिचयेन- चित्रस्य कर्म चित्रकर्म तस्मिन् तस्य वा परिचयः तेन (तत्पुरूष)

आभरणविनियोगम्- आभरणानाम् विनियोगम्। (षष्ठी तत्पुरूष)

स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः- स्तम्भिता वाष्पवृत्तिः (कर्मधारय) तया कलुषः (तत्पुरूष)

चिन्ताजडम्- चिन्तया जडम् (तृतीया तत्पुरूष)

अरण्यौकसः- अरण्यम् ओकः (गृहं) यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि)

तनयाविश्लेषदुःखै- तनयायाः विश्लेषाद् दुःखानि तैः (तत्पुरूष)

.....

सख्यौ- हला शकुन्तले अवसितमण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (हला सऽन्दले अवसिदमण्ऽणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं।)

(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते)

दोनों सखियां- सखी शकुन्तला, तुम्हारा श्रृंगार पूरा हो गया। अब इन दोनों रेशमी वस्त्रों को पहन लो।

(शकुन्तला उठकर पहनती है)

गौतमी-जाते एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व। (जादे एसो दे आण्न्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स।)

गौतमी- पुत्री आनन्द (के आंसुओं) को प्रवाहित करने वाली दृष्टि से (तुमको) गले लगाते हुए से (तुम्हारे) पिता आए हैं तो उचित शिष्टाचार का पालन करो।

शकुन्तला- (सव्रीडम्) तात वन्दे। (ताद वन्दामि।)

शकुन्तला- (लज्जा के साथ) हे तात मैं प्रणाम करती हूं।

काश्यप - वत्से

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमिवाप्नुहि।।7।।

अन्वय- ययातेः शर्मिष्ठा इव भर्तुः बहुमता भव। सा पुरूम् इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।।7।।

अनुवाद

काश्यप - पुत्री

ययाति की शर्मिष्ठा के समान पति की अत्यन्त प्रिय बनो। उसके पुरू के समान तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो। अर्थात् जिस प्रकार शर्मिष्ठा ययाति की अत्यधिक प्रिय रानी थी उसी प्रकार तुम पति की अत्यन्त प्रिय रानी बनो। उस शर्मिष्ठा ने जिस प्रकार सम्राट पुत्र पुरू को प्राप्त किया उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो।

गौतमी- भगवन्, वरः खल्वेषः। नाशीः। (भअवं, वरो क्खु एसो। ण आसिसा।)

गौतमी- भगवन् यह वस्तुतः वर है केवल आशीर्वाद ही नहीं।

काश्यपः- वत्से, इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरूष्व।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

काश्यप- पुत्री, अभी डाली हुई आहुतियों से युक्त अग्नियों की यहां से प्रदक्षिणा करो।

(सब घूमते हैं।)

व्याख्यात्मक टिप्पणी

ययाति- ययाति चन्द्रवंश के संस्थापक राजाओं में से एक थे। उनकी दो पत्नियां थीं शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा दानवराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। यद्यपि शर्मिष्ठा देवयानी की सेविका बन कर आई थी तथापि उसके गुणों पर मुग्ध होकर ययाति ने उससे गान्धर्व विवाह कर लिया। उन दोनों के पुरु नामक पुत्र हुआ जिसके नाम से इस वंश का पुरुवंश नाम पड़ा।

सम्राट- जो राजसूय यज्ञ करता है और राजाधिराज होता है उसे सम्राट् कहते हैं।

समास

अवसितामण्डना- अवसितम् मण्डनम् यस्याः सा। (बहुव्रीहि)

आनन्दपरिवाहिणा- आनन्दं परितः वाध्यति इति तेन। (तत्पुरूष)

.....

काश्यपः - (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते)

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां वहनयः पावयन्तु।।8।।

प्रतिष्ठस्वेदानीम् (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः।

अन्वय- वेदिं परितः क्लश्प्तार्धिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः अमी वैताना: वहनयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपध्नन्तः त्वाम् पावयन्तु।

काश्यप- (ऋग्वैदिक छन्द से आशीर्वाद देते है)

अनुवाद- वेदी के चारों ओर स्थापित, समिधाओं से युक्त, किनारे पर बिछी हुई कुशा से युक्त ये यज्ञ की अग्नियाँ हव्य पदार्थों की सुगन्ध से पाप को नष्ट करती हुई तुम्हें पवित्र करें।

अब प्रस्थान करो। (इधर उधर दृष्टि डालकर) ये शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं?

व्याख्या- महर्षि कण्व द्वारा शकुन्तला को दिए गए आशीर्वाद को गौतमी वरदान मानती है क्योंकि उनके द्वारा दिया गया आशीर्वाद भी वरदान के समान अवश्य फलीभूत होगा।

वैदिक छन्द त्रिष्टुप् का प्रयोग करते हुए कण्व ऋषि सबसे पहले शकुन्तला से उन अग्नियों की प्रदक्षिणा करने को कहते हैं जिन्हें कुछ समय पूर्व ही प्रज्वलित किया गया है और जो हव्य पदार्थों से युक्त हैं। यज्ञ वेदी के चारों ओर गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि स्थापित की जाती है। पश्चिम भाग में गार्हपत्य, दक्षिण पश्चिम में दक्षिणाग्नि और वेदी के पूर्व भाग में आहवनीय अग्नि होती है। ये अग्नियाँ यज्ञ की असुरों से रक्षा करती हैं। उनका समिधाओं से युक्त होना इस बात का सूचक है कि वे अभी भी प्रज्वलित हो रही हैं। कुशा घास शुद्ध और पवित्र मानी गई है अतः यज्ञवेदी पर बिछाई जाती है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

वरः - सिद्ध ऋषियों के कथन सत्य ही होते हैं इसलिए ऋषि के आशीर्वाद को गौतमी आशीर्वाद से अधिक 'वर' बता रही है।

ऋक्छन्दसा- ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते हैं। वैदिक छन्द में यह आशीर्वाद दिया गया है।

समास

क्लृप्तधिष्ण्याः- क्लृप्तानि धिष्ण्यानि येषां ते। (बहुव्रीहि)

प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः- प्रान्तेषु संस्तीर्णाः दर्भाः येषां ते। (बहुव्रीहि)

.....

प्रविश्य

(प्रवेश करके)

शिष्यः- भगवन्, इमे स्मः।

शिष्य- भगवन् हम ये हैं।

काश्यपः - भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

काश्यप - अपनी बहन को मार्ग दिखाओ (बताओ)

शार्ङ्गखः - इत इतो भवती।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

शार्ङ्गखः - आप इधर से, इधर से चलें।

(सब घूमते हैं)

काश्यपः - भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।9।।

अन्वय- युष्मासु अपीतेषु या प्रथमम् जलम् पातुम् न व्यवस्यति प्रियमण्डना अपि या स्नेहेन भवताम् पल्लवम् न आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः उत्सवः भवति इयम् सा शकुन्तला पतिगृहम् याति सर्वैः अनुज्ञायताम्।।9।।

काश्यप- हे समीपवर्ती तपोवन के वृक्षो!

तुम्हारे जल पिए बिना जो पहले जल पीने का विचार भी नहीं करती थी, शृंगारप्रिय होने पर भी जो स्नेह के कारण आपका पत्ता (भी) नहीं तोड़ती थी। आप पर पहली बार फूल आने पर जिसके लिए उत्सव होता था यह वही शकुन्तला पतिगृह जा रही है आप सबके द्वारा अनुमति दी जाए।

व्याख्या- इस श्लोक में शकुन्तला की विदाई के समय पास में स्थित तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करके महर्षि कण्व कहते हैं कि प्रकृति से प्रेम करने वाली शकुन्तला आप से (वृक्षों से) अत्यधिक प्रेम करने के कारण प्रतिदिन आपको जल देने के बाद ही अपने आप जल पीती थी क्योंकि उसका आप सबके प्रति भाई जैसा प्यार था। इसी प्रकार यद्यपि शकुन्तला को सजना संवरना अच्छा लगता था परन्तु फिर भी वह आपके (वृक्षों के) पत्ते या फूल नहीं तोड़ती थी क्योंकि उसे यह लगता था कि यदि मैं आपके फूल व पत्ते तोडूंगी तो आपको पीड़ा होगी इसलिए वह शृंगारप्रिय होते हुए भी शृंगार नहीं करती थी। उसे वृक्षों से इतना प्रेम है कि वह स्वयं कष्ट सहन कर सकती है पर वृक्षों को कष्ट देना नहीं चाहती। केवल इतना ही नहीं जब किसी भी वृक्ष पर पहली बार कोई फूल खिलता तो वह उस अवसर को एक उत्सव के समान बड़ी प्रसन्नता से मनाती और बहुत खुश होती। ऐसी आपके साथ अत्यधिक प्रेम करने वाली शकुन्तला आज आप से विदा हो रही है अपने पति के घर जा रही है आप सभी उसे जाने की अनुमति दें।

इस श्लोक में आश्रम के वृक्षों के प्रति शकुन्तला के अद्भुत स्नेह का वर्णन किया गया है। इसमें समासोक्ति एवं काव्यलिंग अलंकार है एवं शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग हुआ है।

समास

अपीतेषु- न पीताः अपीताः तेषु। (अव्ययी भाव समास)

प्रियमण्डना- प्रियं मण्डनं यस्याः सा (बहुव्रीहि)

कुसुमप्रसूतिसमये- कुसुमानां प्रसूतिः कुसुमप्रसूतिः, कुसुमप्रसूतेः समये (तत्पुरूष)

पदपरिचय

पातुम्- पा धातु तुमुन् प्रत्यय।

अनुज्ञायताम्- अनु उपसर्ग ज्ञा धातु णिच्, कर्मवाच्य लोट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन आत्मनेपद।

(कोकिलखं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला

तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।

परभृतविरुतं कलं यथा

प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।।10।।

अन्वय- इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरूतम् एभिः ईदृशं प्रतिवचनीकृतम्।

(कोयल के शब्द को सुनने का अभिनय करके)

अनुवाद- तपोवन में एक साथ रहने वाले वृक्षों के द्वारा इस शकुन्तला को जाने की अनुमति दे दी गई है क्योंकि कोयल की आवाज को इनके द्वारा इस प्रकार अपना प्रत्युत्तर बनाया गया है।

व्याख्या- महर्षि कण्व ने जब तपोवन के वृक्षों से शकुन्तला की विदाई की सूचना देते हुए उनसे शकुन्तला के जाने की अनुमति मांगी तो तभी वृक्ष पर स्थित कोयल की मधुर ध्वनि सुनाई दी इसे सुनकर कण्व ऋषि ने यह मान लिया कि वृक्षों ने कोयल के माध्यम से शकुन्तला को जाने की अनुमति दे दी। यहां वृक्षों को शकुन्तला को बन्धु बान्धव कहा है क्योंकि वृक्ष और शकुन्तला तपोवन में बहुत समय से साथ-साथ रह रहे थे। कहने का अभिप्राय यह है कि वृक्ष तो स्वयं बोल नहीं सकते किन्तु अनुमति मांगे जाने पर इन्होंने अपनी शाखाओं पर बैठी हुई कोयल की मधुर ध्वनि के माध्यम से अपना उत्तर देते हुए मानों शकुन्तला को उसके पति के घर जाने की अनुमति प्रदान कर दी है। ऐसा कवि का मानना है। कवि की यह कल्पना अत्यधिक मनोरम एवं मन को छूने वाली है। इसमें रूपक अलंकार है।

(आकाशे)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि

श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।

भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः।

शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।11।।

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति)

अन्वय- कमलिनीहरितैः सरोभिः अन्तरः रम्यः छायाद्रुमैः अर्क मयूख-तापः नियमित अस्याः पन्थाः कुशेशय-रज-मृदु-रेणुः-शान्त-अनुकूल पवनः च शिवः भूयात्।

अनुवाद

(आकाश में)

कमलिनियों के हरे भरे सरोवरों से (मार्ग की) दूरियां रमणीय हो, छायादार वृक्षों से सूरज की किरणों का ताप कम हो। इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूलि वाला हो, शान्त और अनुकूल वायु से युक्त और कल्याणकारी हो।

(सभी आश्चर्य के साथ सुनते हैं)

व्याख्या- जैसे ही कोयल की मधुर ध्वनि द्वारा वृक्षों ने शकुन्तला को पतिगृह जाने की अनुमति दी तभी वनदेवता भी आकाशवाणी द्वारा उसके लिए शुभकामना करते है कि पति घर तक का इसका मार्ग हरे भरे कमलिनियों वाले तालाबों से मनोरम हो जिससे मार्ग में सुख और आनन्द मिले थकावट न हो। दोपहर में सूर्य की धूप छायादार वृक्षों के द्वारा शीतल होकर इसके शरीर को सहनीय हो अर्थात् अत्यधिक ताप का कष्ट न हो कमलों के पराग की धूलि से मार्ग सुगन्धित रहे मिट्टी की धूल न हो। साथ ही मार्ग में मिलने वाली वायु शान्तभाव से धीरे-धीरे बहने वाली तथा अनुकूल दिशा में चलने वाली हो जिससे इसे मार्ग में चलने में थोड़ा भी कष्ट न हो। इस प्रकार हमारी पुत्री शकुन्तला का मार्ग प्रत्येक दृष्टि से कल्याणकारी एवं सुखद हो। इसे किसी प्रकार से कोई भय या कष्ट न हो। कवि ने यहाँ यह बताना चाहा है कि शकुन्तला अब महारानी है क्योंकि वह राजा दुष्यन्त की पत्नी है। जिस प्रकार महारानियों के प्रस्थानादि के समय उनके सेवक सेविकाएं उनकी सुख सुविधाओं का प्रबन्ध करते हैं वैसे ही शकुन्तला की सेवा में उसके गमन के समय वृक्ष, वायु कमलिनियां उसकी सम्पूर्ण मार्ग में उसकी सुख सुविधा का ध्यान रखेंगे। यह श्लोक आकाशवाणी के रूप में है जो नेपथ्य से ही कहा जाएगा। प्रस्थान काल में आकाशवाणी होना शुभसूचक है। इसमें काव्यलिंग व परिकर अलंकार है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

परभृत- कोयल को परभृत (परेण भृता) कहा जाता है क्योंकि वह अपने अण्डे कौओं के घोंसले में रख आती है और जब कौआ दम्पती अपने बच्चे समझकर उनका पालन पोषण कर देता है तो वे उड़कर कोयल के पास आ जाते हैं।

समास

अनुमतगमना- अनुमतं गमनं यस्याः सा (बहुव्रीहि)

वनवासबन्धुभिः- वनवासस्य बन्धुभिः (षष्ठी तत्पुरूष)

परभृतविरुतम्- परभृतस्य विरुतम् (षष्ठी तत्पुरूष)

कमलिनीहरितैः- कमलिनीभिः हरितैः। (तृतीया तत्पुरूष)

छायाद्रुमैः- छायाप्रधानः द्रुमैः (कर्मधारय)

नियमितार्कमयूखतापः- नियमितः अर्कस्य मयूखानां तापः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)

कुशेशयरजोमृदुरेणुः- कुशेशयानां रजांसि तैः मृदवः रेणवः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)

शान्तानुकूलपवनः - शान्तः च अनुकूलः च पवनः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)

.....

गौतमी- जाते ज्ञाति जनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः। (जादे ण्णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तबोबण देवदाहिं। प्रणम भज्जवदीणं)

गौतमी- पुत्री अपने सम्बन्धीजनों के समान प्रेम करने वाले तपोवन के देवताओं द्वारा (तुम्हें) जाने की अनुमति दे दी गई है। देवताओं को प्रणाम करो।

शकुन्तला- (सप्रणामं परिक्रम्य। जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे! आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते। (हिला पिअंवदे, अज्जउणदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टन्ति)

शकुन्तला- (प्रणाम करती हुई चारों ओर घूमकर, हाथ से ओट करके कान में) सखी प्रियंवदा आर्यपुत्र के दर्शन के लिए उत्सुक होने पर भी आश्रमभूमि को छोड़ते हुए पैर बड़े दुःख (बड़ी मुश्किल) से आगे बढ़ रहे हैं।

प्रियंवदा- न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थित वियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते-

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ।।12।।

(ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसई। उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा। ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओं।)

अन्वय- मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः।, मयूराः परित्यक्तनर्तनाः, लताः अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

प्रियंवदा- तपोवन के वियोग से दुःखी केवल सखी ही (तुम) नहीं अपितु तुम्हारे कारण वियोग उपस्थित होने पर तपोवन की भी तुम्हारे जैसी समान अवस्था दिखाई पड़ रही है।

हिरनियों ने घास (कुशा) के कौर (ग्रास) उगल दिए हैं मोरों ने नाचना छोड़ दिया (और) पीले पत्ते गिराती हुई लताएं मानो आंसू बहा रहीं हैं।

व्याख्या- शकुन्तला की विदाई के अवसर पर तपोवन की अवस्था का वर्णन करते हुए शकुन्तला को सम्बोधित करके प्रियंवदा कहती है कि तुम्हारे चले जाने से न केवल हम आश्रमवासी अपितु प्रकृति भी दुःखी है हिरणी जो घास खा रही थी उसे जब यह लगा कि शकुन्तला हमें छोड़कर जा रही है तो हिरणियों ने मुख में डाली हुई कुशा के ग्रास को निकाल दिया, जो मोर प्रसन्नता से नाच रहे थे उन्होंने शकुन्तला के चले जाने के समाचार को सुनकर नाचना छोड़ दिया। कवि ने यहां बहुत सुन्दर कल्पना की है कि लताओं से जो पीले पत्ते झड़ कर गिर रहें है वे मानों शकुन्तला के वियोग के कारण लताओं के द्वारा बहाए गए आंसू हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति कन्या शकुन्तला का वियोग सभी को दुःखी कर रहा है।

इसमें उत्प्रेक्षा व समासोक्ति अलंकार है व आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

जनान्तिकम्- यह नाट्य साहित्य का एक पारिभाषिक शब्द है। रंगमंच पर उपस्थित अन्य पात्रों से छिपाकर जब दो पात्र आपस में तीन अंगुलियां उठाकर हाथ की ओट करके किसी के विषय में वार्तालाप करते हैं तब वह जनान्तिक कहलाता है-

त्रिपताकाकरेणान्यान् अपवार्यान्तरा कथाम्।

अन्योन्यामन्त्रणं यस्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्।।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

ज्ञातिजनस्निग्धामिः- ज्ञातयः च ते जनाः ज्ञातिजनाः (कर्मधारय)

ज्ञातिजना इव स्निग्धामिः (कर्मधारय उपमान समास)

अनुज्ञातगमना- अनुज्ञातं गमनं यस्याः सा (बहुव्रीहि)

आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकोयाः- आर्यपुत्रस्य दर्शनेन दर्शने वा उत्सुका तस्याः (बहुव्रीहि)

तपोवनविरहकातरा- तपोवनस्य विरहेण कातरा (तत्पुरूष)

उपस्थितवियोगस्य- उपस्थितः वियोगः यस्य (बहुव्रीहि)

उद्गलितदर्भकवलाः- उद्गलितः दर्भकवलः याभिः ताः (बहुव्रीहि)

परित्यक्तनर्तनाः- परित्यक्तं नर्तनं यैः ते (बहुव्रीहि)

अपसृतपाण्डुपत्राः- अपसृतानि पाण्डूनिपत्राणि याभ्यः ताः (बहुव्रीहि)

.....

शकुन्तला- (स्मृत्वा) तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामत्रयिष्ये। (ताद लता बहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्स)

शकुन्तला- (याद करके) हे पिताजी, तो (मैं अपनी) बहन समान लता वनज्योत्स्ना से विदा लूंगी (ले लूं)

काश्यपः - अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम्। इयं तावद्दक्षिणेन।

काश्यप- तुम्हारा उसके प्रति भागिनी (बहन) जैसे प्रेम को मैं जानता हूँ। यह दाहिनी ओर है।

शकुन्तला- (उपेत्य लतामालिंग्य) वनज्योत्स्ने चूतसंगतापि मां प्रत्यालिंगेतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्य प्रभृतिः दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि। (वणजोसिणिचूदसंगता वि मं पच्चालिङ् इदोगदाहिं साहाबाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी दे क्खू भविस्सं।)

शकुन्तला- (पास जाकर लता का आलिंगन करके) हे वनज्योत्स्ने आम से लिपटी हुई भी तुम इधर की ओर फैली हुई (अपनी) शाखा रूपी बाहुओं से मेरा आलिंगन करो। आज मैं तुमसे दूर हो जाऊंगी।

काश्यपः-

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः।।13।।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व।

अन्वय- मया तवार्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदश्शं भर्तारं त्वं सुकृतैः गताः इयं नवमालिका चूतेन संश्रितवती। सम्प्रति अहम् अस्यां त्वयि च वीतचिन्तः।

काश्यप- मेरे द्वारा तुम्हारे लिए (शकुन्तला के लिए) पहले से ही (जो) सोचे गए अपने अनुरूप (अनुकूल) पति को तुम शुभकर्मों (पुण्य से) से प्राप्त हो गई हो (और) यह नवमालिका आम से मिल गई है। इसकी और तुम्हारी तरफ से अब मैं चिन्तारहित हो गया हूं।

इधर से मार्ग ग्रहण करो (रास्ता पकड़ो)

व्याख्या- इस श्लोक के माध्यम से यह बताया गया है कि काश्यप ऋषि भी एक पिता के समान शकुन्तला के विवाह के विषय में सोचते थे कि इसे इसके जैसा अच्छा एवं गुणी पति मिले। जब दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का विवाह हो जाता है तो काश्यप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योंकि दुष्यन्त एक गुणी एवं अच्छा व्यक्ति हैं जो कि

शकुन्तला के लिए उचित है। इसलिए अपनी चिन्ता से मुक्त होने पर वे कहते है कि अब मैं शकुन्तला विषयक चिन्ता से रहित हो गया हूं और यह नवमालिका ने भी आम का आश्रय ले लिया है तो इसकी ओर से भी मैं निश्चिंत हो गया हूं। वस्तुतः प्रत्येक पिता की यह इच्छा होती है कि उसकी पुत्री को सुयोग्य वर मिले और वह सदा सुखी रहे। जब तक पुत्री का विवाह नहीं हो जाता तब तक पिता चिन्तित ही रहते हैं। अतः काश्यप ऋषि की भी यही स्थिति थी परन्तु अब वह भी चिन्तामुक्त हो गए हैं क्योंकि उनकी दोनों पुत्रियों (शकुन्तला व नवमालिका) को अपने अपने अनुरूप पति (दुष्यन्त व आमवृक्ष) मिल गए हैं।

इस श्लोक में तुल्ययोगिता, समासोक्ति और सम अलंकार है और वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

वनज्योत्स्ना- यह नाम नवमालिका लता का शकुन्तला के द्वारा रखा गया है। जिसे वह अपनी बहिन के समान मानती है। यह वनज्योत्स्ना अब आमवृक्ष का सहारा लेकर बढ़ रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सोदर्यास्नेहम् - सोदर्यायाः स्नेहः (तत्पुरूष)

वीतचिन्तः-वीता चिन्ता यस्य सः (बहुव्रीहि)

पाठ-5

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – चतुर्थ अङ्क
(मूल पाठ, अनुवाद व व्याख्या : श्लोक 14-22)

शकुन्तला- (सख्यौ प्रति) हला, एष द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः (हला, एषा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो)

शकुन्तला- (दोनों सखियों से) सखियों। यह (लता) तुम दोनों के हाथ में (अपनी) धरोहर (अमानत) के रूप में है।

सख्यौ- अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। (इति वाष्पं विहरता) (अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।)

दोनों सखियां- यह (हम) व्यक्ति किसके हाथ में छोड़े? (इस प्रकार (कहकर) दोनों आँसू बहाती हैं)

काश्यप- अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

काश्यप- अनसूया रोओ मत। (रोना बंद करो) निस्संदेह तुम दोनों के द्वारा तो शकुन्तला धैर्ययुक्त (व्याकुलता रहित) की जानी चाहिए। अर्थात् तुम्हें तो शकुन्तला को ढांढस बंधाना चाहिए।

(सब चारों ओर घूमते हैं)

शकुन्तला- तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। (ताद, एषा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।)

शकुन्तला- पिता जी, कुटिया के आस पास विचरण करने वाली, गर्भ के (भार से) कारण सुस्त (धीमी, शिथिल) यह मृगी जब सकुशल बच्चे को जन्म दे दे तो (यह) शुभ समाचार देने वाले किसी को मेरे पास भेज दीजिएगा।

काश्यप- नेदं विस्मरिष्यामः।

काश्यप- (हम) यह नहीं भूलेंगे।

शकुन्तला- (गतिभंग रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (इति परावर्तते) (को णु ख्वु एसो निवसणे मे सज्जइ)।

शकुन्तला- (चलने में बाधा का अभिनय करके) यह कौन मेरे वस्त्र खींच रहा है।

(पीछे की ओर मुड़ती है)

काश्यप- वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिंगुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।14।।

अन्वय- यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपणम् इंगुदीनां तैलं न्यषिच्यत, सः अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

काश्यप- पुत्री,

जिसका मुख कुशा के नुकीले अग्रभाग से बिंध जाने पर तुम्हारे द्वारा घाव को भरने वाला इंगुदी का तेल लगाया जाता था। वह यह सांवा (चावल) की मुट्ठियों (को खिलाने) से बड़ा किया गया और (तुम्हारे द्वारा) पुत्रवत् माना गया मृग तुम्हारे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है।

व्याख्या– पतिगृह जाती हुई शकुन्तला अचानक रूकावट का अनुभव करती है और पूछती है कि यह कौन है जो मेरे वस्त्र को खींच रहा है? तब महर्षि काश्यप उससे कहते हैं कि- यह वही मृग है जिसे तुमने अपने पुत्र के समान पाला है। माता के समान तुमने इसे अपनी मुट्ठियों से इसे जंगली धान खिलाकर बढ़ा किया है। जब घास खाते हुए किसी नुकीले तिनके से इसका मुंह घावयुक्त हो जाता था तो तुम इसके घाव को ठीक करने के लिए इंगुदी का तेल लगाती थी। यही वह मृग मातृप्रेम के कारण तुम्हें जाने से रोक रहा है।

वस्तुतः आश्रम के प्रत्येक लता, पादप पशु पक्षी के प्रति शकुन्तला का अनूठा प्रेम है इसीलिए आश्रम में रहने वाली गर्भवती मृगवधू का प्रसव सकुशल हो जाने पर वह पिता काश्यप से यह शुभ समाचार देने के लिए किसी को भेजने का आग्रह करती है। वह वनज्योत्स्ना की देखभाल का उत्तरदायित्व भी अपनी दोनों सखियों अनसूया और प्रियंवदा को सौंप देती है।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है। वसन्ततिलका छन्द प्रयोग हुआ है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

निक्षेप– इस शब्द का प्रयोग धरोहर के लिए होता है। जब कोई वस्तु किसी के पास कुछ समय के लिए सुरक्षा के निमित्त रखी जाती है तो उसे 'निक्षेप' कहते हैं। धरोहर की रक्षा बड़ी सावधानी से की जाती है क्योंकि यह दूसरे की सम्पत्ति होती है। इसे सुरक्षित लौटाने की चिन्ता रहती है। वस्तुतः यह उत्तरदायित्व बहुत महान् होता है।

इंगुदी– यह एक विशेष प्रकार का जंगली फल होता है। जिसका तेल लगाने से घाव ठीक हो जाते हैं।

श्यामाक– यह एक प्रकार का जंगली धान होता है जिसे 'सांवां' भी कहते हैं। इसे बोया नहीं जाता यह वन में स्वयं उत्पन्न होता है।

समास

गर्भमन्थरा– गर्भेण मन्थरा (तृतीया तत्पुरूष)

अनघप्रसवा– अनघः प्रसवः सस्याः सा (बहुव्रीहि)

व्रणविरोपणम्– व्रणानाम् विरोपणनम् (तत्पुरूष)

कुशसूचिविद्धे– कुशानाम् सूचिभिः विद्धे (तत्पुरूष)

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः– श्यामाकानाम् मुष्टिभिः परिवर्धितकः (तत्पुरूष)

.....

शकुन्तला– वत्स किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्। (इति रुदती प्रस्थिता) (वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जण्णीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।)

शकुन्तला– पुत्र, (तुम्हारा) साथ छोड़कर जाने वाली मुझ शकुन्तला का पीछा क्यों कर रहे हो? अभी ही प्रसूत हुई (मृत्यु को प्राप्त) माता के बिना (भी) पाले गए हो। इस समय भी मेरे से रहित हुए तुम्हें पिता जी पालेंगे तो लौट जाओ।

(ऐसा कहकर रोती हुई प्रस्थान करती है)

काश्यपः-

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं
वाष्पं कुरू स्थिरतया विरतानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे,
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति।।5।।

अन्वय- उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरूद्धवृत्तिम् वाष्पम् स्थिरतया विरत- अनुबन्धम् कुरु। अलक्षित-नत-उन्नत भूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि खलु विषमीभवन्ति।

अनुवाद- ऊपर उठी हुई पलकों वाले नेत्रों के व्यापार को (देखने की क्रिया) रोकने वाले आंसुओं (के प्रवाह) को धैर्यपूर्वक रोको, (क्योंकि) न देखने के कारण नीची ऊँची भूमिभाग वाले इस मार्ग में तुम्हारे पैर वास्तव में लड़खड़ा रहे हैं।

व्याख्या- शकुन्तला जब पतिगृह जाती है तो वह तपोवन के सभी साथियों से विदा लेती है और स्नेह के कारण भावुक भी हो जाती है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि न केवल मानव अपितु पशु भी उसके विरह से दुःखी है। एक मृग का बच्चा जिसे उसने पुत्र के समान पाला था वह भी उसको जाने से रोक रहा है। यहाँ पर कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि हिरण के बच्चे का शकुन्तला को रोकने से यह प्रमाणित होता है कि शकुन्तला का पशु पक्षियों से कितना प्रेम था और वह (शकुन्तला) भी उनसे बिछुड़ते हुए कितनी रो रही है? उसके निरन्तर रोने से आंसुओं का प्रवाह इतना बढ़ गया है कि वह ठीक से देख नहीं पा रही और ऊँची-नीची भूमि पर उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। इसीलिए पिता काश्यप उससे कह रहे हैं कि तुम अपने आंसुओं को रोको जिससे कि तुम्हें रास्ता ठीक से दिखाई पड़े। इस प्रकार इस श्लोक में शकुन्तला की हिरण के बच्चे के प्रति ममता को दिखाया गया है।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।

समास

सहवासपरित्यागिनीम्- सहवासं परित्यजतीति। ताम् (बहुव्रीहि)

अचिरप्रसूतया- अचिरं प्रसूता इति अचिर प्रसूता तया। (बहुव्रीहि)

उत्पक्ष्मणोः- उद्गतानि पक्ष्माणि ययोः तयोः (बहुव्रीहि)

विरतानुबन्धम्- विरतः अनुबन्धः यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)

उपरुद्धवृत्तिम्- उपरुद्धा वृत्तिः येन सः तम् (बहुव्रीहि)

अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे- अलक्षितः नतः उन्नतः भूम्याः भागः यस्मिन् सः तस्मिन् (बहुव्रीहि)

शार्ङ्गखः- भगवन्, ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हति।

शार्ङ्गख- भगवन्, जल के किनारे तक (जलाशय, कुंआ बावड़ी आदि तक) प्रिय व्यक्ति का अनुगमन करना चाहिए (उसको छोड़ने उसके साथ जाना चाहिए) ऐसा सुना जाता है तो यह सरोवर का तट है। यहाँ सन्देश देकर (आप) वापस चले जाएं।

काश्यपः- तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। (सर्वे परिक्रम्य स्थिताः)

काश्यप- तो हम इस पीपल की छाया में आश्रय लेते हैं।

(सब चारों ओर घूमकर खड़े हो जाते हैं)

काश्यपः- (आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्।

(इति चिन्तयति)

काश्यप– (मन में) हमारे द्वारा आदरणीय दुष्यन्त के लिए उचित सन्देश क्या भेजा जाना चाहिए (दुष्यन्त के लिए जो अनुकूल हो वह सन्देश क्या होना चाहिए)

(इस प्रकार सोचते हैं।)

शकुन्तला– (जनान्तिकम्) हला पश्य नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति दुष्करमहं करोमीति। (हला प्रेक्ख णलिणीपत्तन्तरिदं वि सहअरं उदेक्खन्ती आदुरा चक्कवाई आरडदि दुक्करं अहं करोमित्ति)

शकुन्तला (कान में, हाथ से ओट करके)– सखी, (इधर) देखो कमलिनी के पत्ते से छिपे हुए साथी को न देखने के कारण व्याकुल चकवी चिल्ला रही है। मैं कठिन कार्य कर रही हूं (क्योंकि मैं पति के बिना भी जीवित हूं)

अनसूया– सखि, मैवं मन्त्रयस्व।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनी विषाद दीर्घतराम्।

गुर्वपि विरहदु:खमाशाबन्धः साहयति।।16।।

(सहि, मा एव्वं मन्तेहि।

एसा वि पिएण विणा गमेई रअणिं विसाउदीहअरं।

गरूअं पि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि।।)

अनसूया– सखी, ऐसा मत कहो (सोचो)

अन्वय– एषा अपि प्रियेण विना विषाद दीर्घतरां रजनीं गमयति। आशाबन्धः गुरू अपि विरहदु:खं साहयति।

अनुवाद– यह (चकवी) भी अपने प्रिय के बिना दु:ख के कारण विशाल (प्रतीत होने वाली) रात्रि बिताती है, (क्योंकि) आशा का बन्धन विरह के महान् कष्ट को भी सहन करवाता है।

व्याख्या– शकुन्तला को विदा करने के लिए जब आश्रम के सभी लोग जाते हैं तो शार्ङ्गरव कण्व ऋषि से कहते हैं कि आप जलाशय तक ही चलें क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि प्रियजनों को छोड़ने के लिए जल तक अर्थात् सरोवर, कुएं नदी या बावड़ी तक ही साथ जाना चाहिए। यह शुभ माना जाता है। इसलिए सरोवर आ जाने पर शार्ङ्गरव काण्व मुनि को वापस जाने को कहता है तब काण्व ऋषि राजा दुष्यन्त के लिए ऐसा संदेश भेजना चाहते हैं जो राजा के योग्य भी हो और उनके वक्तव्य को भी प्रकट करने वाला हो। तभी शकुन्तला देखती है कि एक चकवा कमलिनी के पत्ते की ओट में छिपा है और उसे न देख सकने के कारण चकवी उसके विरह में तड़प रही है। यह सब देखकर शकुन्तला कहती है कि यह चकवी तो इतनी सी देर के लिए भी अपने प्रिय का विरह सहन नहीं कर पाई और एक मैं हूं जो अपने पति से इतने समय से इतनी दूर रहने पर भी प्राण धारण कर रही हूं। वास्तव में मैं बहुत कठिन कार्य कर रही हूं। यह सुनकर अनसूया कहती है कि ऐसी बात नहीं है क्योंकि यह चकवी भी प्रत्येक रात्रि अपने प्रियतम चकवे के बिना व्यतीत करती है जो रात विरह के दु:ख से और भी लम्बी प्रतीत होती है परन्तु यह भी प्राणों का त्याग नहीं करती क्योंकि उसे आशा है कि प्रात:काल वह अपने प्रिय से पुनः मिलेगी। आशा का बन्धन महान् से महान् दु:ख भी सहन करवा देता है। यह बात शकुन्तला को समझाते हुए अनसूया कहती है कि व्यक्ति को कितने भी बड़े से बड़े कष्ट का सामना क्यों न करना पड़े। वह कितनी भी विशाल विपत्ति एवं दु:ख से क्यों न घिर जाए भविष्य में उस कष्ट से मुक्ति की आशा का बन्धन उस दु:ख को सहन कराने की शक्ति प्रदान करता ही है। इसीलिए शकुन्तला ने भी पति मिलन की आशा से उसके विरह का जो दु:ख सहन किया वह अब दूर हो जाएगा। अनसूया फिर कहती है कि तुम्हारा यह कहना कि मैं दुष्कर कर्म कर रही हूं यह सोचना ठीक नहीं। अभिप्राय यह है कि तुम्हारा प्रिय से मिलन अत्यन्त निकट है अतः दु:खी न होकर इसी आशा में तुम्हें इस विरह वेदना को सहन कर लेना चाहिए।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं आर्या छन्द का प्रयोग है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

आत्मगतम्– यह नाट्यसाहित्य का परिभाषिक शब्द है। इसका लक्षण है- 'अश्राव्यं स्वगतं मतम्'। अर्थात् जो बात रंगमंच पर सबको सुनाने योग्य नहीं होती उसे 'स्वगतम्' अथवा ' आत्मगतम्' कहते हैं। इसमें रंगमंच का कोई पात्र अपने मन के भावों को प्रकट करने के लिए दूसरे पात्रों की तरफ से मुंह फेरकर इस तरह बात करता है कि दर्शक तो सुन लें परन्तु रंगमंच पर स्थित अन्य पात्र न सुन पाएं। 'स्वगतम्' या 'आत्मगतम्' वस्तुतः पात्र की मानसिक भावनाओं को प्रकट करता है।

समास

ओदकान्तम्–उदकस्य अन्तः उदकान्तः, आ उदकान्ताम् ओदकान्तम् (अव्ययी भाव समास)

विषाददीर्घतराम्– विषादेन दीर्घतरा या सा ताम् (बहुव्रीहि)

आशाबन्ध- आशायाः बन्धः। (षष्ठी तत्पुरूष)

.....

काश्यपः- शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

काश्यप– शार्ङ्गरव, शकुन्तला को आगे करके यह तुम्हारे द्वारा मेरी तरफ से उस राजा से कहा जाना चाहिए।

शार्ङ्गरव– आज्ञापयतु भवान्।

शार्ङ्गरव– आप आज्ञा दीजिए।

काश्यपः

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।17।।

अन्वय– संयमधनान् अस्मान् च आत्मनः उच्चैः कुलम् त्वयि अस्याः स्नेहप्रवृत्तिम् कथम् अपि अबान्धवकृताम् च ताम् साधु विचिन्त्य इयम् त्वया दारेषु सामान्यप्रतिपत्ति पूर्वकम् दृश्या अतः परम भाग्य-आयत्तम् तद् वधू बन्धुभिः खलु न वाच्यम्।

काश्यप– संयम रूपी धन वाले हमारा और अपने ऊंचे कुल का, तुम्हारे प्रति इसका प्रेम व्यापार किसी भी प्रकार बन्धु-बान्धवों द्वारा नहीं करवाया गया है उसके विषय में भली प्रकार सोच कर यह (शकुन्तला) तुम्हारे द्वारा अपनी स्त्रियों में समान रूप से आदरपूर्वक देखी जानी चाहिए। उससे अधिक भाग्य के अधीन है। वह वधू के सम्बन्धियों द्वारा निश्चित रूप से नहीं कहा जाना चाहिए।

व्याख्या– इस श्लोक में काण्व ऋषि दुष्यन्त के लिए अपना संदेश भेजते हुए कह रहे हैं हमारा संयम ही धन है अर्थात् अपने सांसारिक विषयों से अपने आप को दूर रखा है और अपनी इन्द्रियों को वश में किया है इसलिए अब हमारे पास संयम रूपी धन ही है और तुम तो राजा हो उच्च कुल से सम्बन्ध रखते हो इसलिए तुम सभी भौतिक विषयों से सम्पन्न हो। हम लोग तो तपस्वी हैं अतः शकुन्तला को दहेज आदि के रूप में देने के लिए हमारे पास किसी भी प्रकार की कोई धन सम्पत्ति नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम अपने उच्च एवं गौरवशाली कुल पुरूवंश की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए हमसे किसी भी प्रकार से दहेजादि की इच्छा न रखना क्योंकि पुरूवंशियों ने हमेशा ही तपस्वियों का आदर किया है। अतः तुम्हें भी हमारी भावनाओं का आदर करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त जो तुमने शकुन्तला से स्वाभाविक रूप से प्रेमविवाह किया उसमें भी किसी के भी बन्धुबान्ध वों की भूमिका नहीं थी तुमने स्वतन्त्र रूप से यह निर्णय लिया तुम्हें किसी ने विवश नहीं किया। इस सम्बन्ध को अपनी सहमति से बनाया है इसलिए अब तुम्हें इसका (शकुन्तला) वैसे ही आदर सम्मान करना है जिस प्रकार तुम

अपनी विधिपूर्वक विवाहित रानियों का करते हो। तुम्हें इसे भी सबके समान आदरभाव एवं गौरव प्रदान करते हुए ही देखना चाहिए।

इससे अधिक सब भाग्य के अधीन है और वधू के सम्बन्धियों द्वारा इससे अधिक कहा जाना अच्छा नहीं लगता। कहने का अभिप्राय यह है शकुन्तला के भाग्य में यदि महारानी बनना है तो वह बनेगी परन्तु हमारा आपसे उसे महारानी बनाने के लिए कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

इस श्लोक मे अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। इसमें लोक व्यवहार की दृष्टि, एक पुत्री के पिता की जो मानसिक स्थिति होती है उसका सुन्दर चित्रण किया गया है।

इस अंक के सर्वश्रेष्ठ श्लोक चतुष्ट्य का यह दूसरा श्लोक है।

समास

संयमधनान् – संयम एव धनं येषाम् ते संयमधनाः तान् (बहुव्रीहि)

स्नेहप्रवृत्तिम् – स्नेहस्यं प्रवृत्तिम् (तत्पुरूष)

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकम् – सामान्या प्रतिपत्तिः सामान्यप्रतिपत्तिः (कर्मधारय) सा पूर्वा यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि)

अबान्धवकृताम् – न बान्धवैः कृताम् (नञ् तत्पुरूष)

भाग्यायत्तम् – भाग्ये आयत्तम् (सप्तमी तत्पुरूष)

.....

शार्ङ्गखः – गृहीतः सन्देशः।

शार्ङ्गख – आपका सन्देश ग्रहण कर लिया गया है।

काश्यपः – वत्से त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

काश्यप – पुत्री अब तुम्हें भी शिक्षा देनी है। वनवासी होते हुए भी हम लौकिक व्यवहारों को जानते हैं।

शार्ङ्गखः – न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।

शार्ङ्गख – निश्चय ही विद्वानों के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है।

काश्यपः – सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य–

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।18।।

कथं वा गौतमी मन्यते।

अन्वय– गुरून् शुश्रूषस्व सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिम् कुरु विप्रकृता अपि रोषणतया भर्तुः प्रतीपम् मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठम् दक्षिणा भव भाग्येषु अनुत्सेकिनी एवम् युवतयः गृहिणीपदम् यान्ति वामाः कुलस्याधयः।।18।।

काश्यप– वह तुम (शकुन्तला) यहां से पतिगृह जाकर (अपने) गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नियों के प्रति प्रिय सखी जैसा व्यवहार करना, अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के विपरीत आचरण मत करना सेवकों पर अत्यधिक उदार रहना (अपने) भाग्य पर घमण्ड न करना। इस प्रकार (आचरण करने वाली) युवतियाँ गृहिणी पद को प्राप्त करती है इसके विपरीत (आचरण करने वाली) कुल के लिए अभिशाप (बीमारी) होती है। अथवा गौतमी (इस विषय में) क्या सोचती हैं?

व्याख्या– इस श्लोक में कण्व ऋषि एक सामान्य पिता के समान अपनी पुत्री को शिक्षा दे रहे हैं कि तुम ससुराल के सभी सदस्यों के प्रति इस प्रकार अच्छा व्यवहार करना जिससे कि तुम अच्छी गृहिणी होने का सौभाग्य प्राप्त कर सको। इसके लिए तुम अपने से बड़ों की सेवा करना, राजा की जो अन्य रानियाँ हैं उनके साथ सखियों जैसा व्यवहार करना। ईर्ष्या द्वेष मत करना। यदि कभी तुम किसी बात से अपने को अपमानित हुआ अनुभव करो तो क्रोधित मत होना और क्रोध के कारण पति के प्रतिकूल कार्य मत करना। ऐसी स्थिति में बड़े धैर्य से कार्य करना और क्रोध को शान्त करना। महल में जितने भी सेवक हैं उनके प्रति उदार भाव रखना। उन्हें किसी प्रकार से दु:ख मत पहुँचाना। अपने अच्छे भाग्य के कारण घमण्ड मत करना क्योंकि घमण्ड होने पर व्यक्ति का व्यवहार औरों के प्रति अच्छा नहीं रहता और वह अपनी मर्यादा को भी भूल जाता है। इस प्रकार से जो युवतियाँ व्यवहार करती हैं वे पति के घर में सद्गृहिणी के स्थान को प्राप्त करती हैं परन्तु जो इसके विपरीत आचरण करती हैं अर्थात् बड़ों की सेवा नहीं करती, पति के प्रतिकूल आचरण करती हैं क्रोध ईर्ष्या व द्वेष करती है। परिवार की स्त्रियों से झगड़ा करती हैं सेवकों पर अत्याचार करती हैं तथा घमण्ड के कारण मर्यादा का उल्लंघन करती हैं वे कुल के लिए अभिशाप बन जाती हैं। इस प्रकार इस श्लोक में गृहलक्ष्मी का स्थान कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इसका वर्णन बहुत ही सुन्दर शब्दों में किया गया है।

यह श्लोक भी श्लोकचतुष्टय में समाविष्ट है। इसमें अर्थान्तरन्यास और रूपक अलंकार है एवं शार्दूलविक्रीप्रित छन्द है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

आधि – आधि का अर्थ है मानसिक दु:ख या विपत्ति जो प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती परन्तु अन्दर ही अन्दर व्यक्ति को क्षीण करती रहती है, नष्ट करती रहती है।

समास

प्रियसखीवृत्तिम् – प्रियाया: सख्या: वृत्तिम् (तत्पुरूष)

सपत्नीजने – समान: पति: यासां ता: सपत्न्य:। (बहुव्रीहि)

गृहिणीपदम् – गृहिण्या: पदम् (षष्ठी तत्पुरूष)

.....

गौतमी– एतावान्वधूजनस्योपदेश:। जाते एतत् खलु सर्वमवधारय। (एत्ति ओ बहूजणस्स उवदेसो। जादे एदं क्खु सव्वं ओधारेहि।)

गौतमी– नवविवाहिताओं (नववधुओं) के लिए इतना ही उपदेश है। पुत्री यह सब अच्छी तरह धारण करो (यह सब याद रखना)

काश्यप:– वत्से परिष्वजस्व मां सखीजनं च।

काश्यप– पुत्री, मुझसे और सखियों से गले मिलो (मुझे और सखियों को गले लगाओ)

शकुन्तला– तात इत एव किं प्रियंवदाऽनसूये सख्यौ निवर्तिष्येते। (ताद इदो एव्व किं पिअंवदा अणसूआओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति)

शकुन्तला– पिता जी, क्या प्रियंवदा और अनसूया (मेरी) सखियाँ यहाँ से ही वापस चली जाएंगी (लौट जाएंगी)?

काश्यप– वत्से! इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

काश्यप– पुत्री ये दोनों भी दी जानी है अर्थात् इन दोनों का भी विवाह किया जाना है। इन दोनों का वहाँ जाना उचित नहीं है। तुम्हारे साथ गौतमी जाएगी।

शकुन्तला– (पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याकांत् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि (कहं दाणिं तादस्य अंकादो परिब्भट्टा मलअतड्डममूलिआ चन्दणलदा विअ देसन्तरे जीविअं धारइस्सं।)

शकुन्तला- (पिता से लिपट कर) पिता की गोद से गिरी हुई मलय पर्वत के किनारे से उखाड़ी गई चन्दन की लता के समान अब मैं परदेस में कैसे जीवन धारण करूंगी (अर्थात् पिता प्रेम से वंचित होकर पति के घर कैसे रह सकूंगी)

काश्यपः - वत्से किमेवं कातराऽसि।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाध्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरूभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।।19।।
(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति)

अन्वय- अभिजनवतः भर्तुः श्लाध्ये गृहिणीपदे स्थिता तस्य विभव गुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला च अचिरात् प्राची पावनम् अर्कम् इव तनयम् प्रसूय वत्से मन विरहजाम् शुचम् त्वम् न गणयिष्यसि।।19।।

अनुवाद- पुत्री इस प्रकार अधीर क्यों हो रही हो? कुलीन वंश (ऊंचे परिवार) में उत्पन्न पति के प्रशंसनीय गृहिणीपद पर स्थित होकर उसके ऐश्वर्य से महान् कार्यों द्वारा प्रतिक्षण व्यस्त होकर और शीघ्र ही पूर्व दिशा के पवित्र सूर्य के समान पुत्र को उत्पन्न करके हे पुत्री! मेरे वियोग से उत्पन्न दुःख को तुम अनुभव नहीं करोगी। ।।18।।

(शकुन्तला पिता के पैरों पर गिरती है अर्थात् पैर छूती है)

व्याख्या- शकुन्तला अपने सम्बन्धियों से विदा लेते हुए बहुत ही भावुक हो रही है कभी वह पिता के प्रेम का स्मरण करती है कभी सखियों बिछुड़ने के दुःख को याद करती है। बार-बार सबसे मिलती है और जब उसे यह पता लगता है कि उसकी सखियाँ उसके साथ नहीं जाएगी तो वह और भी दुःखी हो जाती है शकुन्तला की इस दशा पर पिता कण्व उसे समझाते हुए कहते हैं कि पतिगृह जाकर तुम गृहिणी बन कर अपने कार्यों में व्यस्त हो जाओगी। जब तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र का जन्म हो जाएगा तो उसके पालन पोषण आदि कार्यों में इतनी अधिक व्यस्त हो जाओगी कि तुम मेरे विरह से उत्पन्न दुःख को भूल जाओगी।

वस्तुतः इस श्लोक में जीवन की सत्यता का सुन्दर चित्रण किया है। विवाहित पुत्रियाँ प्रारम्भ में तो अपने माता-पिता के घर को याद करती रहती हैं परन्तु जैसे-जैसे अपनी गृहस्थी के कार्य व उत्तरदायित्व बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे उनका पहले जैसा प्रेम कम हो जाता है। इसलिए कण्व भी शकुन्तला को यही समझा रहे हैं कि तुम भी धीरे-धीरे मेरे वियोग के दुःख को भूल जाओगी।

यह श्लोक भी श्लोकचतुष्टय में से एक है।

समास

मलयतटोन्मूलिता - मलयस्य तटात् उन्मूलिता या सा (बहुव्रीहि)

विभवगुरुभिः - विभवेन गुरुभिः (तृतीय तत्पुरूष)

प्रतिक्षणम् - क्षणे क्षणे इति (अव्ययीभाव)

.....

काश्यपः - यदिच्छामि ते तदस्तु।

काश्यप - जो मैं चाहता हूं वह तुम्हें प्राप्त हो।

शकुन्तला - (सख्यावुपेत्य) हला द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्। (हला दुबे वि मं समं एव्व परिस्सजद्व।)

शकुन्तला - (सखियों के पास जाकर) तुम दोनों एक साथ ही मुझसे गले मिलो।

सख्यौ - (तथा कृत्वा) सखि यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्ततस्मायिदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय। (सहि जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे तद्दो स इमं अत्तणामहेअअङ्किअं अङ्गुलीअअं दंसेहि।)

दोनों सखियां- (वैसा करके) सखि यदि वह राजा पहचानने मे देरी करे (धीमा हो) तो उसे यह अपने नाम से अंकित अंगूठी दिखाना।

साख्यौ- मा भैषी:। अतिस्नेह: पापशङ्की। (मा माआहि। अदिसिणेहोपावसङ्की)

दोनों सखियां - डरो मत। अत्यधिक प्रेम अनिष्ट की आशंका करता है।

शार्ङ्गख: - युगान्तरमारूढ: सविता। त्वरतामत्रभवती।

शार्ङ्गख: - सूरज दूसरे पहर पर चढ़ गया है अर्थात् दोपहर हो गई है। आप जल्दी करें।

शकुन्तला - (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात, कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये। (तदा, कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं।)

शकुन्तला - (आश्रम की ओर मुंह करके) पिता जी, (अब) मैं फिर कब (इस) तपोवन को देखूंगी?

काश्यप: - श्रूयताम्-

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।20।।

अन्वय- चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा, अप्रतिरथं तनयं दौष्यन्तिं निवेश्य, तदर्पित कुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धम् अस्मिन् शान्ते आश्रमे पुन: पदं करिष्यसि।

काश्यप - सुनो-

चिरकाल तक चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी की सपत्नी होकर अद्वितीय वीर दुष्यन्त के पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर, उस पर कुटुम्ब का उत्तरदायित्व सौंप देने वाले पति के साथ इस शान्त आश्रम में पुन: पैर रखोगी।

व्याख्या- शकुन्तला जाते समय जब पिता कण्व के पैर छूती है तो पिता उसे आशीर्वाद देते हैं और कहते हैं मैं तुम्हारे लिए जो कुछ भी चाहता हूं वह तुम्हें प्राप्त हो। वस्तुत: सभी माता पिता अपने बच्चों के लिए हमेशा अच्छा ही सोचते है एवं उन्हें सदा सुखी देखना चाहते हैं। प्रियंवदा और अनसूया के साथ बराबर स्नेह होने के कारण शकुन्तला दोनों को एक साथ गले लगाना चाहती है। सखियाँ भी उसे यह कहती है कि यदि राजा तुम्हें पहचानने में कुछ आनाकानी करे तो तुम यह अंगूठी दिखा देना। वस्तुत: दोनों सखियाँ दुर्वासा मुनि के शाप के विषय में स्पष्ट रूप से न बता कर उसके निवारण का ही उपाय बताती है। यह सुनकर शकुन्तला डर जाती है क्योंकि उसने इस बात की कल्पना भी नहीं की कि दुष्यन्त उसे पहचानने से मना भी कर सकता है। परन्तु सखियाँ उसकी इस व्याकुलता का निराकरण यह कहकर कर देती हैं कि जिससे जितना अधिक स्नेह होता है उसके लिए उतने ही बड़े अनिष्ट की आशंका की जाती है। अर्थात् जो सबसे अधिक प्रिय होता है उसके लिए उतने ही बुरे विचार मन में आते हैं।

शकुन्तला आश्रम की ओर देखती हुई जब यह कहती है कि अब मैं यहां फिर कब आऊंगी तो कण्व मुनि कहते हैं कि गृहस्थाश्रम के सभी उत्तरदायित्वों का वहन करके वानप्रस्थाश्रम में तुम इस आश्रम में पुन: अपने पति के साथ आओगी समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी राजा दुष्यन्त के महारानी पद को अलंकृत करके अद्वितीय महापराक्रमी दुष्यन्त के पुत्र का राज्याभिषेक करके ऐसे पति के साथ तुम आश्रम में आओगी जिसने कुटुम्ब का समस्त भार अपने पुत्र को सौंप दिया है अभी शकुन्तला के पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है अत: उसका नाम न लेकर 'दौष्यन्ति' कहा गया है। यहां कवि ने प्राचीन आश्रम व्यवस्था का पोषण किया है क्योंकि गृहस्थाश्रम के पश्चात् 'वानप्रस्थ' आश्रम होता है यह श्लोक इस अंक के चार सर्वश्रेष्ठ श्लोकों में अन्तिम और चतुर्थ सर्वश्रेष्ठ श्लोक है।

इसमें वसन्ततिलका छन्द एवं माला दीपक अलंकार है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

वानप्रस्थ - आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत चार आश्रम माने गए हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम होता है जिसमें अपने सभी दायित्व अपने बड़े पुत्र को सौंपकर पति-पत्नी दोनों ही वन में जाकर निवास करते है तथा भगवद्भक्ति में लीन हो जाते हैं।

प्रत्यभिज्ञान - पहले देखी हुई वस्तु को पुनः देखकर कुछ स्मरण करना प्रत्यभिज्ञान कहलाता है।

युगान्तरम् - युग का अर्थ यहां पहर है सूर्य अब दूसरे पहर पर चढ़ गए हैं। 24 घण्टे के एक दिन में 8 पहर होते है। अतः एक पहर में तीन घण्टे होते हैं।

समास

चतुरन्तमहीसपत्नी - चत्वारः अन्ताः यस्याः तादृश्याः मह्याः सपत्नी (बहुव्रीहि गर्भक तत्पुरूष)

दौष्यन्तिम् - दुष्यन्तस्य पुत्रः दौष्यन्तिः (तत्पुरूष)

अप्रतिरथम - न विद्यते प्रतिरथः यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)

तदर्पितकुटुम्बभरेण - तस्मिन् अर्पितः कुटुम्बस्य भरः येन तेन (बहुव्रीहि)

.....

गौतमी- जाते, परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्। (जादे, परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मन्तइस्सदि। णिवत्तु भवं।)

गौतमी- पुत्री! जाने का समय बीत रहा है (अर्थात् जाने में देरी हो रही है) पिताजी को वापस भेज दो अथवा (नहीं तो) यह (शकुन्तला) देर तक बार बार इसी प्रकार कहती रहेगी। आप (कण्व ऋषि) वापस चले जाएं।

काश्यपः- वत्से! उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।

काश्यप- पुत्री! मेरी तपस्या के कार्य में रूकावट हो रही है (बाधा पड़ रही है)

शकुन्तला- (भूयः पितरमाश्लिष्य) तपश्चरणपीडितं तातशरीरम् तन्मातिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व। (तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं। ता मा अदिमेत्तं मम किदेउक्कण्ठसस।)

शकुन्तला - (दुबारा पिता से लिपट कर) आप (पिता) का शरीर तपस्या के आचरण से दुर्बल है। अतः आप मेरे लिए अधिक दुःखी मत होइए।

काश्यपः - (सनिःश्वासम्)

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः।।21।।

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु।

(निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च)

अन्वय- वत्से, त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति।

काश्यप-(लम्बी सांस लेकर)

हे पुत्री तुम्हारे द्वारा पहले डाले गए (और अब) कुटिया के द्वार पर उगे हुए नीवार बलि को देखते हुए मेरा दुःख किस प्रकार शान्त होगा। ।।21।।

जाओं, तुम्हारे मार्ग कल्याण कारी हों।

(शकुन्तला और उसके साथ जाने वाले चले जाते हैं)

व्याख्या- गौतमी द्वारा पुनः यह कहे जाने पर कि जाने का समय बीतता जा रहा है कण्व मुनि शकुन्तला से यह कह कर विदा लेते हैं कि उनके तपानुष्ठान में विलम्ब हो रहा है। शकुन्तला कहती है कि तपस्या के कारण

आपका शरीर दुर्बल हो गया है अत: आप मेरे विषय में अधिक चिन्ता नहीं करना। तब गहरी सांस लेकर महर्षि कण्व कहते हैं कि पुत्री मैं तुम्हें कैसे भूल पाऊँगा? क्योंकि तुम्हारे द्वारा कुटिया के बाहर डाले गए नीवार के दाने तुम्हारी याद दिलाएंगे क्योंकि जब भी मैं उन अंकुरित नीवार को देखूंगा तब मुझे तुम्हारी याद आएगी कि शकुन्तला पक्षियों के लिए जो दाना डालती थी उसी से यह नीवार उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार तुम्हारी याद आती रहेगी। इस प्रकार इस श्लोक में कण्व ऋषि के वात्सल्य (पुत्री प्रेम) को बहुत ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

सख्यौ- (शकुन्तलां विलोक्य) हा धिक् हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। (हद्धी हद्धी। अन्तलिहिदा सउन्दला वणराइए।)

दोनों सखियां- (शकुन्तला की ओर देखकर) हाय, हाय शकुन्तला वन पंक्ति (की ओट में हो जाने) से ओझल हो गयी।

काश्यप:- (सनि:श्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचारिणी निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

काश्यप- (लम्बी सांस लेकर) अनसूया, तुम दोनों की सखी चली गई है। अपने दु:ख को वश में करके मुझ जाते हुए के पीछे आओ।

उभे- तात शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं। कथं प्रविशाव:। (ताद सउन्दलाविरहिदं सुण्णं विअ तपोवणं कहं पविसामो।)

दोनों (प्रियंवदा और अनसूया)- पिताजी शकुन्तला से रहित तपोवन खाली सा (दिखाई दे रहा) है। (हम) कैसे प्रवेश करें।

काश्यप:- स्नेहप्रवृतिरेवंदर्शिनी (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भो: शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुत:

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतु:।
जातो माममयं विशद: प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।22।।

अन्वय- हि कन्या परकीय: अर्थ: एव ताम् अद्य परिग्रहीतु: संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पित न्यास इव प्रकामम् विशद: जात:।।22।।

(इति निष्क्रान्ता: सर्वे।)

(इति चतुर्थोऽङ्क:)

काश्यप- स्नेह की अधिकता ही ऐसा दिखा रही है। (विचार मग्न चारों ओर घूमकर) ओह शकुन्तला को पतिगृह भेजकर मेरे द्वारा निश्चिन्तता (स्वास्थ्य) प्राप्त कर ली गई है। क्योंकि निस्सन्देह कन्या पराया धन है उसे आज पतिगृह भेजकर मेरी यह अन्तरात्मा धरोहर लौटा देने के समान अत्यधिक प्रसन्न हो रही है।

(सब चले जाते हैं।)

व्याख्या- प्रियंवदा और अनसूया शकुन्तला से बिछुड़ कर दु:खी हैं और तपोवन उन्हें खाली लग रहा है। वे शकुन्तला को ओझल होने तक देखती रहती हैं। कण्व ऋषि भी पहले दु:खी थे परन्तु शकुन्तला को उसके पति के घर भेजने के पश्चात् महर्षि कण्व परमशान्ति एवं सुख का अनुभव करते हैं। प्रस्तुत श्लोक में उन्हीं के मनोभावों को बताते हुए कहा गया है कि पुत्री तो पराया धन होती है पिता तो केवल मात्र उसकी रक्षा व पालन पोषण करता है और समय आने पर उसके योग्य अधिकारी पति को सौंप देता है जैसे कोई व्यक्ति किसी धरोहर को उसके स्वामी के पास सौंप देता हैं। वैसे ही मैंने आज अपनी पुत्री शकुन्तला को उसके स्वामी दुष्यन्त के पास भेज दिया है। उसे सौंप कर मैं आज परम शान्ति एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं क्योंकि धरोहर की रक्षा व्यक्ति को सदा चिन्तित करती रहती है किन्तु जब उसे वह सुरक्षित रूप से लौटा देता है तो वह चैन की सांस लेता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक विवाह योग्य पुत्री का विवाह न हो जाए तब तक पिता चिन्तित ही रहता है क्योंकि अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की इच्छा उसे होती है और जब वह अपनी पुत्री को मनोनुकूल वर के पास सौंप देता है तो उसके मन का बोझ हल्का हो जाता है और वह अपने को स्वस्थ प्रसन्नचित्त अनुभव करता है। इसी प्रकार महर्षि कण्व भी अब निश्चित होकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

नीवारवलि- नीवार जंगली धान्य होता है।

पंचमहायज्ञों में एक 'बलिवैश्वदेव' यज्ञ भी है इसमें पशुपक्षियों को अन्नादि दिया जाता है। इसलिए शकुन्तला पक्षियों के खाने के लिए नीवार के कण कुटिया के बाहर बिखेर देती थी। इसे ही 'नीवार बलि' कहा गया है।

समास

रचितपूर्वम्- पूर्वं रचितम्। 'भूतपूर्वे चरट्' से समास हुआ है।

शकुन्तलाविरहितम्- शकुन्तलया विरहितम् (तृतीया तत्पुरूष)

प्रत्यर्पितन्यासः- प्रत्यर्पितः न्यासः येन सः (बहुव्रीहि)

(चतुर्थ अङ्क समाप्त)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क पर आधारित प्रष्टव्य प्रमुख प्रश्न

1. चतुर्थ अंक का महत्त्व
2. दुर्वासा ऋषि के शाप का महत्त्व
3. कण्व ऋषि की भूमिका

'चतुर्थ अंक का महत्त्व' पाठ-2 में बता दिया गया है। शेष अन्य विषय इस प्रकार हैं-

'दुर्वासा ऋषि के शाप का महत्त्व'

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में कवि कालिदास द्वारा प्रस्तुत किया गया 'शाप' का प्रसंग उनका अपना मौलिक चिन्तन है। महाभारत के शकुन्लोपाख्यान में 'शाप' का उल्लेख नहीं है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में शकुन्तला अपनी कुटिया के बाहर दुष्यन्त के विषय में सोचते हुए इतनी खो जाती है कि उसे आए हुए अतिथि दुर्वासा ऋषि का भी पता नहीं चलता। जब दुर्वासा ऋषि शकुन्तला के इस व्यवहार को देखते हैं तो वे अपने को अपमानित समझ कर उसे शाप देते हैं कि 'जिसकी सोच में डूबी हुई तुमने मुझ आए हुए (अतिथि) का अपमान किया वह याद दिलाने पर भी इस प्रकार तुम्हें भूल जाएगा जैसे कि कोई पागल व्यक्ति पहले कही हुई बातों को याद नहीं रखता है।

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।

इस शाप का नाटक में विशेष महत्त्व रहा है। सर्वप्रथम तो सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करना अपराध है इस बात को इस शाप द्वारा सिद्ध किया गया है। यहाँ दो प्रकार का सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन हुआ है एक तो दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह द्वारा और दूसरे घर आए हुए पूजनीय अतिथि की उपेक्षा द्वारा। अपराध को क्षमा भी कर दिया जाता है यदि अपराधी अपना दोष स्वीकार कर ले यही बात इस अंक में भी बताई गई है। जब शकुन्तला की सखियां शाप को सुनकर व्याकुल हो जाती हैं तो वे ऋषि के पास जाकर अनुनय विनय करती है कि शाप जो नहीं वापिस लेते परन्तु उसके प्रभाव को शान्त करने का समाधान बता देते हैं।

नाटक की कथावस्तु को नया मोड़ देकर उसे और अधिक रोचक बनाने में 'शाप के प्रसंग' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि यह शाप का प्रसंग न होता तो शायद नाटक की समाप्ति चार अंकों में ही हो जाती और नाटक इतना प्रभावशाली न बन पाता। शकुन्तला दुष्यन्त के पास चली जाती और वहाँ पुत्र जन्म होता और नाटक का अन्त हो जाता। तब फिर शायद इस नाटक का नाम भी 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' न होता क्योंकि 'अभिज्ञान' भी तभी होगा जब कोई भूल जाए। यदि शाप न दिया होता तो क्या दुष्यन्त शकुन्तला को भूल सकता था? क्या वह इतना अबोध या विश्वासघाती था? नहीं वह तो राजा है और एक राजा का इस प्रकार का व्यवहार स्वीकार्य नहीं है। इसलिए 'शाप' के कारण ही कथावस्तु आगे बढ़ती है जिसके माध्यम से कवि कालिदास ने अन्य कई घटनाओं एवं मान्यताओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

इस प्रकार दुर्वासा का शाप इस नाटक का केन्द्र बिन्दु है क्योंकि इसी के चारों ओर नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु घूमती है। शाप की परिकल्पना करके कवि ने जहाँ इस नाटक के नायक के चरित्र को उज्ज्वल बनाने का सफल प्रयास किया है। वहीं इससे नाटक के कथानक में विशेष चमत्कार की उत्पत्ति हुई है जो कि कालिदास के अपूर्व नाट्यकौशल का परिचायक है।

'कण्व ऋषि की भूमिका'

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के तीन ऋषि पात्रों कण्व, दुर्वासा और मारीच से महर्षि कण्व की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। वे आश्रम के कुलपति हैं। कश्यप गोत्र में उत्पन्न होने के कारण उनका दूसरा नाम काश्यप भी है। नाटक के चतुर्थ अंक में इनकी उपस्थिति प्रत्यक्षरूप से है। यद्यपि ऋषि नैष्ठिक ब्रह्मचारी त्रिकालदर्शी और विद्या एवं ज्ञान की साक्षात् मूर्ति हैं परन्तु चतुर्थ अंक में उनकी भूमिका आदर्श पिता, महान् अग्निहोत्री लोकव्यवहारज्ञ श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक के रूप में है।

आदर्श पिता-

महर्षि कण्व यद्यपि अविवाहित है शकुन्तला भी उनकी औरस सन्तान नहीं है तथापि इस नाटक में वे आदर्श पिता के रूप में चित्रित किए गए हैं क्योंकि उन्होंने अनाथ शकुन्तला को अत्यन्त प्रेमपूर्वक पाला है। वे उससे अत्यधिक स्नेह करते हैं। वे उसको अपना जीवन सर्वस्व व प्राण मानते हैं। शकुन्तला के प्रति उनका निःस्वार्थप्रेम है। पुत्री की विदाई के समय आदर्श पिता के समान उनका हृदय भी रो पड़ता है और वह कह उठते हैं-

यास्यत्द्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।
कण्ठः स्तम्भित वाष्पवृत्तिः कलुषश्चिन्ताजऽंदर्शनम्।।

जब शकुन्तला उन्हें चिन्ता न करने के लिए कहती है तो वे कहते हैं कि यह तो संभव कैसे हो सकता है क्योंकि-

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरुढ़ं निवारबलिं विलोकयतः।।

ऋषि कण्व आदर्श पिता की भूमिका तो तब पूर्णतया निभाते हैं जब वे शकुन्तला को ससुराल में जाकर बड़ों की सेवादि का उपदेश देते हैं। क्योंकि एक आदर्श पिता ही पुत्री को ऐसी शिक्षा दे सकता है-

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तृर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येव गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः।।

इसी प्रकार दुष्यन्त को विनम्रतापूर्वक दिया गया सन्देश भी एक आदर्श पिता का सन्देश कहा जा सकता है। आदर्श पिता के समान ही वे अपनी पुत्री के सुख की कामना करते हुए कहते है- 'यदिच्छामि ते तदस्तु। शकुन्तला को पति के घर भेजकर वे अत्यधिक सन्तोष का अनुभव करते हैं- 'जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।'

इस प्रकार चतुर्थ अंक में महर्षि कण्व की आदर्श पिता के रूप में भूमिका विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

महान अग्निहोत्री- महर्षि कण्व इस अंक में एक महान् अग्निहोत्री के रूप में भी चित्रित किए गए है। उनके आश्रम में सदैव त्रिकालिक यज्ञ का विधान है। इस नियम का पालन उनकी अनुपस्थिति में भी किया जाता है। यज्ञ की रक्षा के लिए ही आश्रमवासियों ने राजा दुष्यन्त को आश्रम में आमन्त्रित किया है। विदाई के समय कण्व शकुन्तला को इन्हीं यज्ञ की अग्नियों की प्रदक्षिणा करने का आदेश प्रदान करते हैं- 'वत्से, इतः सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणी कुरुष्व'। तप का आचरण करने के कारण उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है- 'तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्'। वे सदा ही अपने तपादि कार्यों में लगे रहते हैं तभी शकुन्तला के विदा होने के समय वे कहते हैं- उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।'

लोकव्यवहारज्ञ- नैष्ठिक ब्रह्मचारी एवं तपस्वी होते हुए भी कण्व ऋषि को लोक व्यवहार की सम्पूर्ण जानकारी है। क्योंकि उनके द्वारा कहे गए- 'वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्' इस कथन से यह ज्ञात होता है। शकुन्तला को दिया गया उपदेश भी इसी ओर संकेत करता है कि वे लौकिक व्यवहार से भलीभांति परिचित थे। वे जानते हैं कि समाज में इस बात को ठीक नहीं समझा जाता कि विवाहित पुत्री बहुत समय तक पिता के घर रहे। इसीलिए शकुन्तला गान्धर्व विवाह का पता लगते ही वे उसे पति के घर भेजने का प्रबन्ध करते हैं। उन्हें यह भी पता

है कि अविवाहित कन्याओं को दूसरे के घर जाना ठीक नहीं या बाहर घूमना स्वीकार्य नहीं है अतः वे प्रियंवदा और अनसूया को शकुन्तला के साथ नहीं भेजते। इसीलिए वे शकुन्लता से कहते हैं कि 'वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्रगन्तुम्'। वे कन्या को पराया धन मानते है- 'अर्थो हि कन्या परकीय एव।' इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि कण्व ऋषि लौकिक व्यवहार में बहुत निपुण थे।

श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक- कण्व ऋषि दूसरे के मन की भावनाओं को भली प्रकार समझते है। उन्हें मानव स्वभाव का भी अच्छा ज्ञान है। वे जानते हैं कि व्यक्ति अपने दुःखों को धीरे-धीरे भूल जाता है। इसलिए शकुन्तला के पूछने पर कि 'आपसे अलग होकर मैं कैसे जीवित रहूँगी? वे कहते हैं कि-

अभिजनवतो भर्तुः श्लाध्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।।

इस प्रकार चतुर्थ अंक में महर्षि कण्व को अनेक भूमिकाओं में भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

अभ्यास-कार्य

नोटः *परीक्षा में अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में से कुल 12½ अंक के प्रश्न पूछे जाएंगे। जिनकी रूपरेखा इस प्रकार है।*

प्रश्न 1-	सप्रसंग व्याख्या (किन्हीं दो श्लोकों में से एक)	4 अंक
प्रश्न 2-	प्रश्न का उत्तर (किन्हीं दो में से एक प्रश्न)	5 अंक
प्रश्न 3-	समास विग्रह व समास का नाम	1½ अंक
प्रश्न 4-	टिप्पणियाँ (नाटक के पारिभाषिक शब्द)	2 अंक

नोटः *विद्यार्थियों को अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं-*

प्रश्न 1- निम्नलिखिति श्लोकों की सप्रसंगत व्याख्या कीजिए।

श्लोक संख्या- 1, 2, 6, 10, 12, 16, 17, 18, 20, 22

प्रश्न 2- निम्नलिखित समस्त पदों का विग्रह करते हुए समास का नाम लिखें।

अतिथिपरिभाविनि, अनन्यमानसा, प्रकृतिवक्रः, तेजोद्वयस्य अरण्यौकसः, अनुमतगमना, वनवासबन्धुभिः, उद्गलितदर्भकवला, परित्यक्तनर्तनाः, विषाददीर्घतराम्, संयमधनान्, दौष्यन्तिम्, अप्रतिरथम्, तदर्पितकुटुम्बभरेण, प्रत्यर्पितन्यासः।

प्रश्न 3- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(क) चतुर्थ अंक का सार लिखिए।

(ख) चतुर्थ अंक का महत्त्व बताइए।

(ग) दुर्वासा ऋषि के शाप का उल्लेख करते हुए उसका महत्त्व बताइए।

(घ) 'शकुन्तला प्रकृति पुत्री है' स्पष्ट कीतिए।

(ङ) महर्षि कण्व का चतुर्थ अंक के आधार पर चरित्र चित्रण करे।

प्रश्न 4- निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए

अंक, विष्कम्भक, स्वगत, जनान्तिकम्।